रेत, बीज और दीप

• काव्य संग्रह

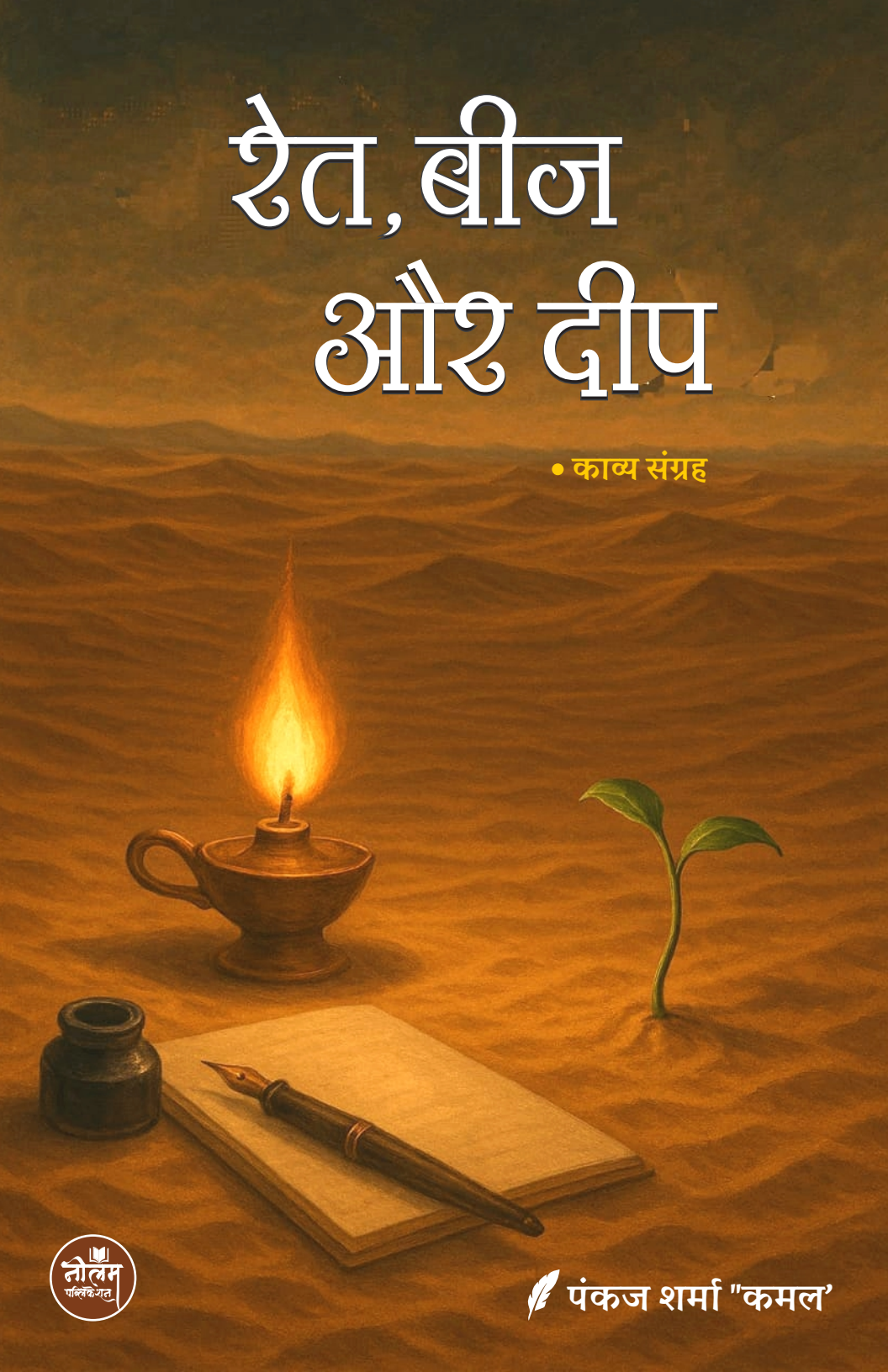

पंकज शर्मा "कमल"

नोलम पब्लिकेशन

© नीलम पब्लिकेशन, मुंबई

Ret Beej Aur Deep

ISBN: 978-93-48519-52-8

Author's Name : Pankaj Sharma "Kamal"

Publishers: Neelam Publication

Printer: Neelam Publication

Office : Neelam Publication

M.D. Road, Opp. Railway Power House,

Near Kandivali Station, Kandivali East, Mumbai-400101

Phone : +91 9892153444

Email : helloneelampublication@gmail.com

Rs: 300/-

Copyright@ Pankaj Sharma "Kamal"

Edition: First- 2025 (Hindi)

© नीलम पब्लिकेशन, मुंबई

रेत, बीज और दीप

पंकज शर्मा "कमल"

First Published by Neelam Publication 2025
Copyright : Pankaj Sharma "Kamal"

ISBN NO.: 978-93-48519-52-8

This book has been published with all efforts taken to make the material error-free after the consent of the author. However, the author and the publisher do not assume and hereby disclaim any liability to any party for any loss, damage, or disruption caused by errors or omissions, whether such errors or omissions result from negligence, accident, or any other cause.

While every effort has been made to avoid any mistake or omission, this publication is being sold on the condition and understanding that neither the author nor the publishers or printers would be liable in any manner to any person by reason of any mistake or omission in this publication or for any action taken or omitted to be taken or advice rendered or accepted on the basis of this work. For any defect in printing or binding the publishers will be liable only to replace the defective copy by another copy of this work then available.

प्रस्तावना

अस्तित्व का अनकहा संवाद

यह कोई साधारण यात्रा नहीं है।
यह रेत में दबे पदचिह्नों की वह कथा है,
जिसे वायु भी मिटा नहीं पाती,
और समय भी केवल छूकर निकल जाता है -
एक अज्ञात साक्षी बनकर।

'रेत' - जो क्षणभंगुरता का प्रतीक है,
किंतु उसी क्षणभंगुरता में छिपा है शाश्वतता का बीज।
'दीप' - जो असहनीय अंधकार में भी अपनी थरथराती लौ से
जैसे अस्तित्व का उद्घोष करता है,
"मैं हूँ, इसलिए मैं संघर्षरत हूँ।"
'बीज' - वह आदिम आस्था,
जो न मिटती है, न थमती है,
सिर्फ प्रतीक्षा करती है-
कभी धरती की,
कभी जल की कभी प्रकाश की कभी हवा के स्पर्श की।

यह संग्रह कोई गाथा नहीं है-
यह चुपचाप बहते जीवन का अंतरंग संवाद है,
जो स्वयं से स्वयं की ओर लौटता है,
जहाँ हर शब्द, हर प्रतीक,
अदृश्य चक्रों में घूमती हुई चेतना का प्रतिरूप है।
सभ्यताओं के पतन और पुनरुत्थान में,

व्यक्तिगत पीड़ाओं और सामूहिक स्वप्नों में,
यह अनवरत संघर्ष -
केवल देह और भूख का संघर्ष नहीं है,
यह पहचान की उस अंतिम रेखा की तलाश है,
जहाँ 'मैं' विलीन हो जाता है -
सर्वथा मौन में।
"रेत, बीज और दीप" -
उन असंख्य अदृश्य यात्राओं का दर्पण है,
जो शब्दों में तो कहती हैं कुछ,
परंतु उनके पीछे एक अनकहा मौन,
एक गहरा, तीव्र नीरव स्पंदन चलता रहता है।

यह संग्रह,
उन यात्रियों के लिए है
जो रेत पर चलते हुए भी दीपक थामे रहते हैं,
जो पतन को भी बीज की तरह संजो लेते हैं,
जो अवसान को भी
एक नवांकुर की तरह अनुभव कर पाते हैं।
आइए,
हम सब इस मौन यात्रा के सहयात्री बनें —
जहाँ कोई अंतिम पड़ाव नहीं है,
सिर्फ यात्रा है —
अनंत की ओर, अंतर की ओर।

आमुख

जब जीवन अत्यंत साधारण हो जाए- जहाँ निराशाएँ, कुंठाएँ, अधूरी शिक्षा, असफलताएँ, दिव्यांगता एवं पाप-बोध गहराई तक पैठ चुके हों- तब कोई नहीं सोचता कि वहाँ से भी कविता फूट सकती है। हम नहीं जानते यह यात्रा कब और कैसे शुरू हुई। पर भीतर जो लगातार कुछ कहता रहा, उसने कब शब्दों का रूप ले लिया- यह स्वयं हमारे लिए भी एक रहस्य है।

लेखन हमारे लिए न कोई आंदोलन है, न कोई क्रांति। यह हमारा मौन प्रतिवाद है- कभी अपने समय का, कभी अपनी सीमाओं का, और कभी उस नियति का, जो हम सबकी परछाईं बनकर साथ चलती है।

"रेत, बीज और दीप"

तीन प्रतीक हैं- सूखी धरती की पीड़ा, अंतर्मन में पलती संभावनाओं के बीज, और उस छोटे से दीपक की जिजीविषा, जो अंधकार में बुझता नहीं।

हमें न कोई बड़ा कवि होने का दावा है, न यह भ्रम कि हमारा लेखन किसी युग को बदल देगा। पर यदि हमारी कोई एक पंक्ति भी किसी के हृदय को स्पर्श कर सके, तो हम स्वयं को सफल मानेंगे। यह संग्रह — हमारे मौन की आवाज़ है, हमारे अनुभवों की राख से उपजा बीज, एवं भीतर जलती आशा की एक धीमी, लेकिन अडिग लौ।

जो भी साहित्य-प्रेमी या पाठक लिखना चाहते हैं.... उनसे इतना ही कहना चाहेंगे- अपने भीतर उतरिए। उस कारण को खोजिए जो आपको लिखने के लिए बाध्य करता है। यदि वह आवाज़ भीतर से गूंजे- "मुझे लिखना ही है", तो फिर अपने जीवन को उसी दिशा में ढाल लीजिए।

प्रकृति के निकट जाइए। अपने अनुभवों, स्मृतियों, स्वप्नों और छवियों के सहारे कहिए- जो आपने देखा, जिया, महसूस किया और खोया है। जीवन में जो कुछ भी आपके हृदय को छूता है, प्रेरित करता है- पुरानी-नई फ़िल्में, संगीत, किताबें, तस्वीरें, सपने, सड़कें, पेड़, बादल, जल, रोशनी और छायाएँ - यदि वे आपकी आत्मा से संवाद करती हैं, तो उन्हें अपनी प्रेरणा का स्रोत बनाइए, उन्हें अपनाइए। यदि दैनिक जीवन आपको साधारण लगे, तो दोष उसमें नहीं - स्वयं में उस कवि को खोजिए, जो साधारण को

असाधारण बना सके। यदि इस आत्म-संधान से कविताएँ जन्म लें, तो वे किसी मान्यता की मोहताज नहीं होंगी। वे आपके जीवन की प्रतिध्वनि होंगी - आपके भीतर की सच्ची और अनिवार्य अभिव्यक्ति।

एक रचना तभी श्रेष्ठ होती है जब वह भीतर की अनिवार्यता से उपजी हो — यही उसकी असली कसौटी है। कविता- जीवन के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति, रचनात्मकता, जीवन से प्रेम है। जब यह प्रेम गहराता है, तब हम उसकी सुंदरता में कुछ जोड़ना चाहते हैं- थोड़ी और कविता, थोड़ा और संगीत, थोड़ा और उजाला।

हमारे लिए कविता यही प्रयास है - जीवन के प्रति प्रेम की एक मौन, लेकिन स्पष्ट अभिव्यक्ति। यदि हमारी किसी कविता में आपको कोई जानी-पहचानी छवि दिखे, तो समझिए कि वह आपकी स्मृति से नहीं, मेरी सच्चाई से निकली है।

अंत में इतना ही कहेंगे- यह काव्य-संग्रह उन अनगिनत आवाज़ों की पुनर्रचना है, जिन्हें हमने भीतर तक जिया है।

हम आशा करते हैं कि हमारी अनुभूतियों का यह संग्रह "रेत, बीज और दीप" पाठकों के हृदय को छूने में सक्षम सिद्ध होगा।

रचनाकार

पंकज शर्मा 'कमल'

आभार संदेश

जिस भावभूमि से यह मेरा काव्य-संग्रह रेत, बीज और दीप जन्मा है, वहाँ तक अकेले पहुँचना संभव नहीं था। यह यात्रा उन असंख्य संबंधों, भावनाओं, प्रेरणाओं और विश्वासों की साझी उपलब्धि है, जिन्होंने मुझे शब्दों की इस साधना तक पहुँचाया।

यह संग्रह सादर समर्पित है- मेरे पूज्य पिताजी को, जिनकी आत्मिक उपस्थिति, संस्कारों की छाया और चिंतन की धारा ने मेरे साहित्यिक व्यक्तित्व को आधार प्रदान किया।

सर्वप्रथम, मैं अपने परिवार के प्रति हृदय की गहराइयों से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ- विशेष रूप से अपने पुत्र लक्ष्य, पुत्री सभ्यता, पुत्रवधू अनुभा तथा अपनी अर्धांगिनी रूपा जी के प्रति, जिन्होंने मुझे सामाजिक, पारिवारिक एवं आर्थिक उत्तरदायित्वों से मुक्त कर सृजन के क्षेत्र में पूर्ण समर्पण की स्वतंत्रता दी। उनकी यह निःशब्द परंतु गहन सहभागिता इस संग्रह की आत्मा है—बिना उनके यह काव्य केवल एक अधूरी अभिलाषा ही रह जाता।

मैं पीजीएफ साहित्य मंच के संस्थापक दीक्षित दंपति का कोटिशः आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने मुझे साहित्य साधक मंच से जोड़ा—एक ऐसा सृजन-संस्थान, जहाँ साहित्य अपने सच्चे स्वरूप में प्रवाहित होता है। इस मंच पर प्राप्त हुए सहृदय मित्रों, सहयात्रियों और साधकों ने मेरी अभिव्यक्तियों को दिशा दी, उन्हें परिष्कृत किया और आत्ममंथन की प्रेरणा दी। उनके संवादों और सहयोग ने मेरे विचारों को और अधिक स्वाभाविक तथा गहन रूप प्रदान किया।

मैं विशेषरूप से तीन आत्मीय एवं सृजनशील व्यक्तित्वों का स्मरण करना अपना सौभाग्य मानता हूँ श्रीमती राजश्री बिष्ट, श्रीमती अंजना सिंह, श्रीमती मंजरी शर्मा। इनकी संवेदनशील दृष्टि, निरंतर संवाद एवं आत्मीय समर्थन मेरे लिए आलोकस्तंभ सिद्ध हुए। इनके शब्दों में समाहित विश्वास ने ही मेरे विचारों और मनोभावों को संग्रह रूप में ढालने का साहस दिया।

अंत में, मैं साहित्य साधक मंच-पीजीएफ, पीजीएफ सोसायटी के समस्त निवासियों, सोशल मीडिया से जुड़े सभी सुधी मित्रों, परिजनों और पाठकों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने मेरी रचनाओं को पढ़ा, सराहा और मुझे एक लेखक के रूप में आत्मीय स्वीकृति प्रदान की।

रेत, बीज और दीप अब केवल मेरा नहीं, आप सबका है। इस संग्रह की कोई पंक्ति आपके हृदय में हल्की-सी भी भाव-तरंग जगा सके, तो यही इस यात्रा की सार्थकता होगी। आप सभी के प्रेम और सतत समर्थन हेतु कोटिशः आभार।

पंकज शर्मा 'कमल

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
01	रेत, बीज और दीप	01
02	मैं कवि नहीं, हूँ केवल माध्यम	03
03	शुरुआत की तलाश	06
04	मैं फूल खिला सकता हूँ	08
05	श्वासों की यात्रा	09
06	अस्तित्व की अनवरत तलाश	11
07	उद्भव से अवसान तक	13
08	अवसान में छिपा प्रभात	15
09	अस्तित्व की मौन साधना	17
10	विलय और उदय का संगम	18
11	काल-सागर के यात्री	20
12	अस्तित्व का अनुत्तर प्रश्न	21
13	खामोशी का संवाद	22
14	छलावा (एक समय की परछाईं)	23
15	तेरी आहट	25
16	दीप बनते जुगनू	26
17	लिखा कुछ भी नहीं	27
18	श्रम का मौन इतिहास	28
19	शाम से महफ़िल	31
20	मैं- एक अनन्त बोध	32
21	विलय की वेला	34
22	दबे पांव ज़िंदगी	35
23	उम्मीद की धनक	36
24	अब समझ में आता है...	37
25	संयोग की छाया में	38

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
26	छूटते यथार्थ के छोर	40
27	दर्पण के पार	41
28	पराकाष्ठा	42
29	मिट्टी की जिज्ञासा	43
30	स्वयं से युद्ध	44
31	अंतःरण का आलोक	47
32	बीज के भीतर	50
33	परिवर्तन की सांझ	51
34	कहाँ साथ छूटा?	53
35	मैं और मेरी ख्वाहिशें	54
36	एक खयाल	55
37	हम जिन्होंने काल को चुनौती दी	56
38	अंतर की आराधना	57
39	मैं ही तत्व हूँ	59
40	अभी तो आग़ाज़ है	61
41	शब्दों का ताप	63
42	दिल की धड़कनें	65
43	नयनजल में डूबे नक्षत्र	67
44	निशब्द नीलिमा	68
45	स्वप्न-विहग की गाथा	69
46	सौरभ-स्नान	70
47	प्राण और पाथेय	71
48	धर्मरक्षा एवं मानवता की पुकार	72
49	अंदर का मौसम	75
50	अंतिम मिलन	76

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
51	कालजयी मैं	77
52	सब अच्छा है	79
53	अस्तित्व का प्रश्न	80
54	प्रश्नों की मूक वेदना	80
55	पंचतत्व का सार	83
56	मैं अब भी खड़ा हूँ	84
57	अडिग दीपक	85
58	अंतर्निहित प्रकाश	86
59	एक अनसुना पथिक	87
60	विचलित नहीं	88
61	सांझ का मौन संवाद	89
62	मैं सीमित शब्दों में, विस्तृत अर्थों में	90
63	स्वयं से संवाद	92
64	शब्दों के परे	93
65	अधूरी ख्वाहिशों का कारवां है ज़िंदगी	95
66	स्वप्न-संध्या की प्रतीक्षा	96
67	अधूरी कहानियाँ	97
68	स्मृति की धूप में	98
69	वटवृक्ष : एक मौन नायक	99
70	शब्दों की वीणा पर	100
71	बसंत का प्रथम स्पर्श	102

रेत, बीज और दीप

रेत से उपजा एक बीज,
धूप की तपिश में आँखें खोलता है -
एक छोटी सी हरियाली की जिद लिए।

वहीं पास में,
एक दीया जलता है-
हवा से जूझता,
अंधकार के महासमुद्र को काटने की नन्ही चेष्टा में।

सभ्यताएँ -
उन बेलों की तरह हैं,
जो कभी तो पर्वतों पर चढ़ जाती हैं,
और कभी चट्टानों में दरार ढूंढती हैं,
अपने को बचाने के लिए।

मनुष्य-
एक नाविक,
जिसकी नौका
कभी समय की तूफानी लहरों पर डगमगाती है,
तो कभी आशाओं के नन्हे दीपों से दिशा पाती है।

वह रेत पर अपने पदचिह्न छोड़ता है,
जानते हुए कि अगली ही लहर
उन्हें मिटा देगी।
पर फिर भी-
वह चलता है,
क्योंकि चलना ही उसका धर्म है।

हर पतन एक बीज है,
जो गहन अंधकार में ही जड़ पकड़ता है।
हर अवसान एक दीप है,
जो आखिरी क्षण में भी उजाले की गोद में समर्पित होता है।
और यह सब-
रेत, बीज और दीप-
समय के विशाल फलक पर
एक अदृश्य चित्र बनाते हैं,
जिसे केवल वह देख सकता है,
जो प्रतीकों के भीतर छुपी यात्रा को समझता है।

उद्भव से अवसान तक-
जीवन, मृत्यु और पुनर्जन्म का
एक अबूझ चक्र है,
जहाँ हर अंत में छुपा है
एक नया आरंभ।

मैं कवि नहीं, हूँ केवल माध्यम

मैं कवि नहीं
हूँ केवल माध्यम,
मैं नहीं रचता कविताएँ—
वे ही उतरती हैं मुझमें,
जैसे कोई अदृश्य स्पर्श
शब्दों के वस्त्र पहन
मेरी चेतना में सजीव हो उठता हो।

कोई मृदु किरण
भोर के पहले सपने में प्रवेश करती है,
और एक पंक्ति—
बिना पूछे
मेरे मन के कागज़ पर टंकित हो जाती है।

कोयल की पुकार में
मैं कोई छवि पकड़ता हूँ,
ओस की बूँदों में
कोई छंद।
और मैं...
बस एक माध्यम बन जाता हूँ
जहाँ से होकर कविता बहती है।

कभी संध्या का रक्तिम सौंदर्य
मेरे अंतर्मन को भिगो देता है,
और वही नमी
शब्दों में निखर उठती है
कभी स्वर में, कभी मौन में।

पूर्णिमा की चाँदनी
जब शिखर पर होती है,
तो मेरी आत्मा तक भीग जाती है,
और कविता—
जैसे उसी क्षण
मेरे भीतर जन्म लेती है।

अमावस्या की नीरव रातें
अक्सर ज़्यादा उपजाऊ होती हैं
भावनाओं के लिए।
जब चारों ओर कुछ नहीं होता,
तब भीतर का सब कुछ
बाहर आ जाता है—
शब्द बनकर,
साँस बनकर।

कभी जब कोई पुरानी रचना पढ़ता हूँ,
तो लगता है—
यह तो मेरी नहीं,
किसी और ने लिखवाई थी मुझसे,
जैसे ब्रह्मांड ने
क्षण भर के लिए
मुझे केवल एक कलम बना दिया हो।

मैं तो बस
एक स्वर हूँ
जिस पर प्रकृति अपनी रचना गुनगुनाती है।
मैं केवल सुनता हूँ
वो सब कुछ
जो मौन कहना चाहता है।

मैं कमल,
उर्फ़ कमलांशु,
बस वही लिखता हूँ
जो पहले से ही कहीं लिखा है—
आकाश में,
पत्तों पर,
या किसी टूटते तारे के अंतिम उजास में।

कविताएँ मुझे रचती हैं—
मैं तो बस
एक सादे पन्ने-सा
उन्हें स्वयं में समा लेने को प्रस्तुत रहता हूँ।

"शुरुआत की तलाश"

(एक रचनाकार की आत्मस्वीकृति)

मैं कुछ दिन तक
इसी में उलझा रहता हूँ—
कहाँ से शुरू करूँ?

प्रेम हो या कविता,
दोनों की धरती एक-सी होती है—
कोमल, पर अस्थिर।
एक भी अनजाना क़दम
उस पर दरार छोड़ सकता है,
जो बाद में किसी दरार से नहीं,
बल्कि एक शून्य से रिसने लगता है।

मैं जानता हूँ—
कविता में पहला शब्द
और प्रेम में पहला मौन
निर्धारित करता है
कि अंत समर्पण होगा या पश्चाताप।

इसलिए मैं रुकता हूँ।
हर बार।
हर नई रचना,
हर नए स्पंदन से पहले।

मैं शब्दों की देह में
आत्मा टटोलता हूँ।
प्रेम की आँखों में
अपनी अनकही पीड़ा पढ़ता हूँ।
कविता को देखता हूँ
जैसे कोई ऋषि दीर्घ तप के बाद
शब्द के ब्रह्म से साक्षात्कार करता है।

कई बार शुरुआत
किसी भूले हुए दुःख से होती है,
जिसे हमने वर्षों से
किसी मुस्कान के नीचे
दफ़्न कर रखा था।

कभी वह एक पत्र की तरह होती है
जो भेजा तो नहीं गया,
पर मन के भीतर
हर रोज़ खोला गया।

मैं जानता हूँ अंत करना सरल है—
एक विराम,
एक विरक्ति,
या कभी बस चुप्पी।
पर आरंभ...
वह तो जैसे स्वयं जीवन माँगता है।
जैसे गर्भ में पल रही कोई चेतना,
जो जन्म लेने से पहले
सृष्टि से संवाद करना चाहती हो।

कभी-कभी लगता है—
शायद प्रेम और कविता
दोनों ही ईश्वर की सबसे कठिन परीक्षाएँ हैं,
जहाँ उत्तर नहीं लिखे जाते—
बस जिए जाते हैं।

इसलिए मैं ठहरता हूँ,
कभी भय से,
कभी श्रद्धा से,
कभी इसलिए भी
कि कहीं मेरे शब्द
उस मौन को न तोड़ दें
जो अभी ठीक से रोया भी नहीं।

और जब सबकुछ
भीतर के संदेह से पार पा लेता है—
तब कोई एक क्षण,
एक दृष्टि,
या किसी याद का टूटता हुआ स्वर
मेरे भीतर से
मुझे ही शुरू कर देता है।

तब न मैं कविता लिखता हूँ,
न प्रेम करता हूँ—
बल्कि वे मुझे जीने लगते हैं।

मैं फूल खिला सकता हूँ

एक शिला थी- मौन,
अलसाई-सी, शताब्दियों की थकान ओढ़े।
उसके हृदय में कहीं
छुपी थी स्पंदनों की पहली आँच-
अनगिन संभावनाओं की राख तले।

अचानक!
ज्यों दो रक्तिम पत्तियाँ फूटीं-
भोर की अंजुलि-सी,
काँपती,
उत्सुक,
जीवन के प्रथम चुंबन को आतुर।

वह पत्थर अब जीवित था -
हवा की हथेली पर थरथराता,
सपनों में सिक्त,
स्मृतियों में भीगता हुआ।

मैं ठिठका -
उस मौन की भाषा पढ़ने को।
एक हल्का जुड़ाव,
दो पत्तियाँ,
एक नन्हा चुम्बन धरती पर।

और तभी
मेरे अंतस की अतल गहराई में
कोई स्वर फूटा-
"मैं फूल खिला सकता हूँ!"

नदियाँ बह सकती हैं
शुष्क हृदयों में भी,
चट्टानों के गर्भ से भी
अंकुर फूट सकते हैं।

हे सृष्टि!
तू केवल प्रतीक्षा है उस क्षण की
जब एक साँस,
एक स्पर्श,
एक प्रेम
पत्थर को भी
कविता बना दे।

श्वासों की यात्रा

उद्भव से अवसान तक-
केवल देह की नहीं,
यह आत्मा की यात्रा है-
अज्ञान से ज्ञान की ओर,
बंधन से मुक्ति की ओर।

बीज जब फूटता है मिट्टी में,
वह जानता नहीं कि वह वटवृक्ष बनेगा,
परंतु फिर भी-
वह जीवन की पुकार पर विश्वास करता है।
यही श्रद्धा,
यही प्रारंभिक स्पंदन,
आत्मा का प्रथम प्रणाम है अस्तित्व को।

रेत,
जो बिखरती है हवाओं में,
यह याद दिलाती है-
सब कुछ क्षणभंगुर है,
जो भी बंधा है रूप, नाम और आकार में,
वह नष्ट होगा, विलीन होगा,
केवल चेतना का नीरव स्वर शेष रहेगा।

दीप,
छोटा सा, काँपता हुआ,
अंधकार के महासमुद्र के बीच-
कर्म और ज्ञान का प्रतीक है।
यह दिखाता है कि सत्य का संकल्प,
भले ही नन्हा हो,
समस्त तमस को विदीर्ण कर सकता है।

मनुष्य,
एक यात्री-
जो देह-नाव में बैठा है,
काल-सागर में बहता है,
किन्तु उसकी अंतर्यात्रा-
मुक्ति की ओर है।

सभ्यताएँ बनती हैं,
टूटती हैं,
पुनः बनती हैं-
जैसे श्वास आती है और जाती है,
पर आत्मा शाश्वत रहती है-
निर्विकार, निष्कलुष, नित्य।

यह जीवन केवल उत्तरजीविता नहीं है,
यह स्मरण है-
अपने मूल स्रोत का,
अपने वास्तविक स्वरूप का।
जहाँ 'मैं' और 'तुम' का भेद मिट जाता है,
जहाँ केवल एक अनाहत नाद गूंजता है-
"अहं ब्रह्मास्मि।"

उद्भव से अवसान तक,
सच तो यह है-
ना कोई आरंभ है,
ना कोई अंत।
यह सब केवल लीलाएँ हैं,
जो विराट की अभिव्यक्ति मात्र हैं।

बीज से वट,
वट से रज,
रज से आकाश -
और फिर मौन।
अंततः
सब कुछ उसी मौन में समा जाता है,
जिस मौन से यह सब उदित हुआ था।

अस्तित्व की अनवरत तलाश

उद्भव से अवसान तक,
यह यात्रा मात्र श्वासों की गणना नहीं,
यह है-
अर्थ की अनवरत खोज।

एक शिशु जब पहली बार रोता है,
तो वह केवल जीवन में प्रवेश नहीं करता,
वह घोषणा करता है-
"मैं हूँ, और मैं जानना चाहता हूँ- मैं क्यों हूँ?"

मनुष्य,
एक शाश्वत यात्री,
जो कभी मिट्टी को मूर्त करता है,
तो कभी विचारों को अमर।
जिसके हाथों में स्वप्नों की मशाल है,
और पैरों में यात्रा की थकान।

सभ्यताएँ उगती हैं,
मिट्टी से, श्रम से, प्रेम से, रक्त से।
वे फलती हैं - कला, विज्ञान, धर्म, दर्शन में;
वे ढहती हैं - अहंकार, संघर्ष, विस्मरण में।
परंतु हर पतन,
हर ध्वंस,
एक नया बीज छोड़ जाता है भविष्य के लिए।

क्या है उत्तरजीविता?
सिर्फ देह का बचाव?
या स्मृतियों की जड़ें बचाए रखना,
किसी गीत में, किसी आखर में, किसी दीवार पर बने चिह्न में?

अस्तित्व,
एक क्षणभंगुर साजिश है समय के विरुद्ध।
और इंसान,
उस साजिश का सबसे भोला पात्र,
जो हर पतझड़ के बाद भी
नवपल्लवों की आस में
नए स्वप्न बोता है।

वह जानता है-
एक दिन उसका नाम
हवा के गीतों में बिखर जाएगा,
पर फिर भी
वह चुपचाप पत्थरों पर अपने हस्ताक्षर उकेरता है,
रेत पर महल बनाता है,
ताकि आने वाली पीढ़ियाँ जान सकें-
"यहाँ कोई था, जो संघर्ष करता था, प्रेम करता था, जीता था।"

इसलिए,
उद्भव से अवसान तक,
जीवन केवल अस्तित्व की रक्षा नहीं,
जीवन है -
अर्थ की खोज,
स्मृति की साधना,
और असंभव के विरुद्ध प्रेम की अंतिम पुकार।

उद्भव से अवसान तक

उद्भव से अवसान तक,
एक लंबी यात्रा का नाम है जीवन।
जन्म की पहली चीख से लेकर
मृत्यु की अंतिम निःश्वास तक,
इंसान बस
उत्तरजीविता की अदृश्य दौड़ में भागता रहा है।

कभी धरती की गोद से अन्न उगाता,
कभी आकाश को छूने की चाह में
सीढ़ियाँ रचता, गिरता, उठता,
फिर से प्रयास करता।

सभ्यताएँ उगती हैं-
रेत पर बने महलों की तरह,
और फिर एक दिन
समय की बयार में ढह जाती हैं,
परंतु उनके बचे टुकड़े,
उनके बचे स्वप्न,
फिर किसी नए कर्णधार के हाथों
नई सुबह का आगाज़ करते हैं।

उत्थान के क्षणों में गर्वित होती हैं नसें,
पतन के क्षणों में झुक जाती हैं आँखें,
परंतु भीतर कहीं,
एक चिरन्तन जिजीविषा,
टिमटिमाती रहती है -
बचाए रखने को नाम, पहचान, अस्तित्व।

युद्ध, प्रेम, त्याग और छल के बीच
मनुष्य अपनी पहचान तलाशता है,
कभी मिट्टी में बीज बनकर,
तो कभी धुएँ में आकार खोकर।

इतिहास के पन्ने फड़फड़ाते हैं-
किसी वीर की कहानी बयाँ करते,
किसी गुमनाम की व्यथा छुपाते।
हर पत्थर, हर निशान,
गवाही देते हैं उस अदृश्य संघर्ष की,
जिसमें हर किसी ने
अपने तरीके से जीवन को साधा है।

आज भी,
विज्ञान की प्रगति के बीच,
युद्ध की विभीषिकाओं के साए में,
शहरों की चकाचौंध और गाँवों की उदासी में,
इंसान वही आदिम प्रश्न लिए खड़ा है-
"कैसे टिके रहूँ इस अथाह अंधकार में?"

उद्भव से अवसान तक,
यह यात्रा कभी थमती नहीं,
सिर्फ रंग बदलती है-
भावनाओं के, सपनों के,
संघर्षों के और समय के।

और हम सब-
इस अनंत यात्रा के अनाम राही,
अविराम चलते जाते हैं,
संभवतः फिर से खोजने
एक नया उद्भव।

अवसान में छिपा प्रभात

उद्भव से अवसान तक-
प्रभात से संध्या तक,
स्वप्नों की कोई सूक्ष्म सरिता बहती रही है,
अज्ञात से अनजानी दिशाओं में।

कहीं क्षितिज की कोमल बाहों में,
नवजात किरणों ने गीत गाए हैं,
कहीं रजनी के शांत आँचल में,
बुझती साँसों ने मौन वंशी बजाई है।

धरती की गोद में उगते अन्न के बीच,
छुपे रहे किसी गुमसुम प्रणय के बीज;
आकाश की असीम ऊँचाइयों में,
किसी निष्प्राण आकांक्षा के पंख झूलते रहे।

सभ्यताएँ-
विलक्षण स्वप्नों के पुष्प,
जो रेत की साँझी बगिया में महके,
फिर नीरव साँझों में धीरे-धीरे
ओस की बूँदों-से मिट गए।

परंतु...
टूटते पतंगों के धागों पर भी,
कोई अदृश्य आशा की धुन बजती रही है;
हर पतन के गर्भ में,
किसी नवजागरण की नर्म चाँदनी पलती रही है।

गर्वित धमनियों की उत्तप्त धाराएँ,
कभी स्वर्णिम स्वप्नों की प्रतिमा गढ़ती रहीं,
तो कभी झुकी पलकों के नीरव क्षणों में,
आत्मा की पुकार बन बहती रहीं।

युद्धों के धूमिल धुएँ में भी,
कोई मधुमय कल्पना भटकती रही,
छलों और त्यागों की वीथियों में भी,
कोई निश्छल प्रेम-कुसुम झरता रहा।

इतिहास के प्राचीरों से
कभी कोई वंशी की मधुर तान उठी,
तो कभी
अश्रु-सिंचित गाथाओं ने नीरवता में शरण ली।

आज भी-
प्रगति के धुएँ में झिलमिलाते दीपों के पार,
अज्ञात से एक कोमल प्रश्न टिमटिमाता है-
"क्या कोई छाया शेष रहेगी इस काल-सागर में?"

उद्भव से अवसान तक-
सिर्फ़ यात्रा का संगीत शेष है,
भावनाओं के कंचन तारों में बँधी हुई,
एक नीरव रागिनी-
जो अनंत आकाश में झंकृत होती रहती है।

और हम सब-
सपनों के रजत पराग लिए,
उदासी के नभ में उड़ते अविराम,
किसी अनाम प्रभात की तलाश में
यात्रा करते रहते हैं,
प्रेम, पीड़ा और प्रतीक्षा की वीणा थामे हुए।

अस्तित्व की मौन साधना

1.
रेत बहती है,
मैं थमता हूँ,
रेत थमती है,
मैं बहता हूँ।

2.
दीप की काँपती लौ में
मैं अपनी प्रार्थना रखता हूँ-
न जलने का भय,
न बुझने की लालसा।

3.
बीज अंधकार में पलता है,
मिट्टी के भार तले मुस्कुराता है-
अंधकार ही जन्म है,
प्रकाश एक विस्मरण।

4.
अस्तित्व कोई उत्तर नहीं,
यह एक प्रश्न है-
जो श्वास से श्वास तक
पलता है, बढ़ता है, ढहता है।

5.
मैं चलता हूँ,
ना किसी लक्ष्य की ओर,
ना किसी पहचान की ओर-
मैं चलता हूँ
केवल चलने के लिए।

6.
उद्भव मेरा संकल्प नहीं था,
अवसान मेरी हार नहीं होगी।
मैं तो उस मौन का एक क्षण हूँ,
जो स्वयं को अनुभव कर रहा है।

7.
रेत में बीज बोने वालों को
तूफानों से डर नहीं लगता।
वे जानते हैं-
संघर्ष ही प्रथम प्रार्थना है।

विलय और उदय का संगम

नव ज्योत्स्ना-सी छिटकी धवल वेला,
उद्भव से अवसान तक बहती मधुर सरिता,
जन्म की प्रथम किलकारी में जैसे
कोई अज्ञात रागिनी झंकृत हो उठी हो।

स्वप्न-गंध से मृदुल वायुओं ने
धरती की श्यामल गोद को चूमा,
बीजों के अधर पर नन्हीं मुस्कानें फूटीं,
अंबर ने कोमल किरणों से कर स्मरण।

सभ्यताओं के संगमरमर महल-
रेत के साँझी सपनों में आकार लेते,
चपल झोंकों से टूटते, बिखरते,
परंतु हर कण में
अमर ज्योति का स्पर्श लिपटा रहता।

गौरव के उत्कर्ष में पुलकित हृदय,
विपत्ति के पतन में भी-
कोई मौन पुकार, कोई सूक्ष्म रुदन,
जिसे केवल तृणों की काँपती देह सुनती है,
और चाँदनी अपने आँचल में समेट लेती है।

अश्रु और अट्टहास के बीच,
युद्धों की धूसर भूमि पर भी,
प्रेम की चुप्पी में कोई मृदु वंशी बजती रहती-
जैसे पीड़ा भी
कभी-कभी मधुमय बन जाती है।

काल की विकराल धारा में भी,
शिशु-सी कोमल आशाएँ,
कमलदल पर बैठे मोती समान,
काँपती हैं, किंतु डूबती नहीं।

आज भी-
भोर के मलयानिल में
किसी अज्ञात दीपशिखा की गंध तैरती है,
जो थके, टूटे हृदयों को
एक मूक स्वप्न सौंप जाती है।

काल-सागर के यात्री

1)
कोमल प्रभा बही चुपचाप,
उद्भव से अवसान तक-
मौन धरा की पलकों पर,
सपनों का मधु-स्नान तक।

(2)
जन्म-ज्योति की प्रथम सिहरन,
रुद्ध स्वरों की प्रथम कहानी,
माटी ने थामे स्वप्न-सुमन,
अंबर ने गाई मृदु वाणी।

(3)
रेत-बसेरा, स्वप्न-सवेरा,
महलों का मधुर गीत ढलता,
टूटे सपनों की राखों में,
कोई दीप अब भी जलता।

(4)
गर्वित गाथाएँ गूंज उठी,
पतन में भी बिखरी मुस्कान,
काँपती साँसों ने रचा वहाँ,
एक अनाम मधुर अभियान।

(5)
युद्धों की राख में अंकुर फूटे,
प्रेम ने काँटे भी चूमे,
पीड़ा ने वंशी छेड़ी है,
अश्रु बने दीपों के झूमे।

(6)
चुप्पी की वीणा बजती है,
अरण्य के मौन तिमिर तले,
संध्या की सुधियों में बंधकर,
गंध उठी नयनों के तले।

(7)
उद्भव से अवसान तलक,
यह यात्रा थमती कहाँ है?
क्षण-क्षण बिखरी रजत रेखा,
क्षण-क्षण उजियारा बसा है।

(8)
हम सब पथिक अनाम अरे,
अश्रु-पंख लिये उड़ते हैं,
किसी अदृश्य प्रभात की आशा में,
स्वप्न दीप जलाते हैं।

अस्तित्व का अनुत्तर प्रश्न

जन्म-
एक अज्ञात का उद्घाटन।

मृत्यु-
एक चुप्पी की अंतिम दस्तक।

बीच का सारा जीवन-
अस्थिरता की एक लंबी साँस।

मैं चलता रहा,
न थाह थी न किनारा।
धरती की दरकती देह पर,
आकाश के टूटे सपनों में,
अपना अक्स ढूँढ़ता रहा।

सभ्यताएँ-
हाथों की मिट्टी से उठीं,
आँखों की नमी से ढही।
वे इतिहास नहीं बनीं,
वे बस धुंध बनकर बिखर गईं।

मैंने देखे हैं नाम,
पत्थरों पर खुदे हुए,
जिन्हें बारिश ने धो डाला था।

मैंने सुने हैं गीत,
जिनके सुर
कहीं गुम हो गए हैं
सर्द हवाओं में।

जिजीविषा-
एक टिमटिमाता दीपक,
जिसे हर झोंका
थोड़ा और बुझा जाता है,
फिर भी वह जलता रहता है-
अहंकार नहीं,
आदत से।

कभी-कभी सोचता हूँ-
क्या संघर्ष
केवल अस्तित्व का शोकगीत है?
या किसी और जन्म के ऋण की अदायगी?

समय-
एक छलावा।
अस्तित्व-
एक प्रतिध्वनि।
हम-
कुछ भी नहीं, फिर भी सब कुछ।

उद्भव से अवसान तक-
बस एक मौन यात्रा,
जिसके पदचिन्ह
रेत पर पड़े हैं,
और हर लहर
उन्हें मिटाने को आती है।

खामोशी का संवाद

अब शब्दों का शोर नहीं चाहिए मुझे,
क्योंकि मैंने देख लिया है-
कानों से ज़्यादा आँखें धोखा देती हैं।

मैंने बरसों बोया विश्वास,
उगाए रिश्तों के अंकुर,
हर भाव को शब्दों की चादर में लपेटा,
मगर वो चादर हमेशा छोटी पड़ गई-
उसकी समझ से।
अब मैं चुप हूँ।
क्योंकि मेरी खामोशी
उसके हर सवाल का जवाब है।

मैंने जो कहा,
वो सुना नहीं गया,
और जो नहीं कहा-
उसी ने सबसे गहरी गूँज पैदा की।

अब मेरी नज़रों की नमी,
मेरे होंठों की थरथराहट,
और मेरी पीठ पर बोझ बनी चुप्पी
कहती है वो सब,
जो शब्द कह नहीं पाए।

वो पूछता है- "क्या हुआ?"
मैं मुस्कुरा देता हूँ-
जैसे पतझड़ में कोई पेड़
आखिरी पत्ता गिरने पर मुस्कुराए।

शब्दों की अर्थहीनता को पहचान कर
मैंने मौन का सहारा लिया,
क्योंकि कुछ रिश्ते
सन्नाटों से नहीं,
आवाजों से टूटते हैं।

छलावा (एक समय की परछाईं)

अहं की धुंध में खोए थे जो,
स्वयं को शिखर समझ बैठे।
नयन मूंदे, न देख सके
छलकते समय के पैरों के छाले।

धूप की ओट में साया समझे,
स्वप्नों को सच में ढाल दिया।
पर समय, उस मौन चित्रकार ने,
हर रंग का उत्तरकाल दिया।

गौरव के मंदिर ढहते हैं जब,
तो मौन ही शंखनाद करता है।
जिन्हें था गुरूर ऊँचाई का,
वो देखो—धूल में बात करता है।

लंका में रावण हँसा था जब,
सीता के मौन पर उसने विजय मानी।
पर शिव का त्रिनयन सब देख रहा था-
वह मुस्कान भी समय के सम्मुख थमी।

और दुर्योधन- जिसे अश्वत्थामा का गर्व था,
जिसे न्याय एक खेल लगा-
गदा के हर वार में सुनता नहीं था
भीम की प्रतिज्ञा का बोलता जलजला।

वे सब भी बड़े थे,
पर समय से बड़े नहीं।
वे भी झुके नहीं,
पर अंततः झुकाए गए।
ध्वंस की छाया में,
सभी की ऊँचाई बराबर हो जाती है।

तुगलक ने भी बनवाया था स्वप्नों का नगर,
इतिहास ने उसे 'विलक्षण' कहा, पर
जनमानस ने मौन लिखा-
"गुरूर, नियति का पहला पतन है।"

चाणक्य की आंखों में भी वो ज्वाला थी,
जिसने नंदवंश को राख किया।
किंतु वह अग्नि नहीं, अहंकार नहीं थी-
वह तो नीति थी- विवेक का ताप।

अब समय मुस्कुरा रहा है, चुपचाप,
क्योंकि वह जानता है,
हर सिर जो ऊँचा होता है
कभी न कभी ज़रूर झुकता है-
या तो प्रेम से,
या पराजय से।

तेरी आहट

अक्सर सिंदूरी शामें तभी खूबसूरत होती हैं,
जब उनमें तेरे आने की कोई आहट होती है।

चुपके से कोई ख़्वाब अगर पलकों पे उतर आए,
उसमें भी बस तेरी ही चांद सी सूरत होती है।

तेरे बिना हर बात अधूरी लगती है जैसे,
जैसे बिन साज़ के कोई अधूरी सरगम होती है।

फूलों की नर्मी, चाँद की ठंडी-सी वो चुप्पी,
सब में तेरी मौजूदगी की राहत होती है।

कभी जब तन्हा दिल से तेरा ज़िक्र निकलता है,
हर साँस में एक जानी-पहचानी राहत होती है।

तेरी हँसी की गूँज से महक उठती हैं गलियाँ,
इन सड़कों की भी फिर कोई चाहत होती है।

तू मिल जाए तो हर मौसम लगने लगे है ताज़ा,
वरना तो हर रुत में बस उलझन की सूरत होती है।

"कमल" को अब तुझसे ही हर लफ़्ज़ में रंग भरना है,
तेरे बिना तो शायरी भी सिफ़र-सी तासीर होती है।

दीप बनते जुगनू

चुपचाप थे, घने सायों में
कभी थरथराते उजास से,
वो जुगनू जो समय की सीवनों में
कातते थे एक मौन प्रकाश।

न उन्हें पहचान मिली,
न किसी आँगन की बाती बने;
पर अंधेरों की तहों में
उनकी चमक, सच्ची पूजा बनी।

जब थक गई दिशाएँ,
जब शब्द थमे और दीप बुझे,
तब वे आगे आए-
नन्हे, पर संकल्प से भरे।

हर अंधेरी राह में,
जहाँ सन्नाटे ने घोंटा था गला,
वहाँ जुगनू टिमटिमाए-
मानव की हारती आशा का गला न घुटने दिया।

वे जानते थे-
कि कोई सूर्य न कहेगा उन्हें,
न कोई स्तुतिगान होगा उनका;
पर उनके होने से
किसी भूले पथिक की आँख
एक दिशा पकड़ती है।

अब उन्होंने पहचान लिया है-
स्वयं में ही सृजन का बीज है,
प्रकाश कोई ऋण नहीं,
बल्कि आत्मा की परछाईं है।

न मिट्टी माँगते, न आकाश,
सिर्फ इतना ही कि
कोई उन्हें देखे-
सिर्फ़ एक बार उस क्षण में
जब सब बुझ चुका हो।

क्योंकि वही पल
उनकी आभा का सत्य है,
वहीं जुगनू
दीप बन जाते हैं।

लिखा कुछ भी नहीं

दुनिया को हकीकत मुझे पता कुछ भी नहीं,
इल्ज़ाम हजारों हैं, खता कुछ भी नहीं।

हर चेहरे पे चुप्पी की चादर तनी हुई,
लब सिले हुए हैं, मगर दवा कुछ भी नहीं।

मैंने तो बस अपना ही सच बयान किया,
फिर भी मेरे हिस्से में वफ़ा कुछ भी नहीं।

मेरे दिल में क्या है, पढ़ ना सकोगे,
सारे पन्ने भरे हैं, और लिखा कुछ भी नहीं।

जो भी मिला सफर में, अजनबी सा निकला,
अपनी पहचान में, आईना कुछ भी नहीं।

रिश्तों की अदालत में हम दोषी ठहरे,
सुनवाई तो हुई थी, फैसला कुछ भी नहीं।

तन्हाई ने सीखा दी खुद से बात करना,
अब महफ़िल में भी, राबता कुछ भी नहीं।

ख्वाबों की हिफाज़त में जागते रहे हम,
नींद आई बहुत, पर सिला कुछ भी नहीं।

हर मोड़ पे उजाले थे फिर भी खो गए,
किस्मत के नक़्शे में रास्ता कुछ भी नहीं।

इक उम्र की कमाई थी कुछ सच्चे लफ़्ज़,
बाज़ार में देखा तो क़ीमत कुछ भी नहीं।

श्रम का मौन इतिहास

वह जो धूल में गिरा-
और फिर उठ खड़ा हुआ,
जैसे पृथ्वी ने उसे ही रचा हो
अपने गर्भ की तपती मिट्टी से।

जिसने आंसुओं को पीकर
होंठों पर मुस्कान उगाई,
जिसने चुपचाप सह लिया
हर कोने में उगते अंधेरे को,
और फिर भी उजाले की बात की-
कभी अपने लिए नहीं,
सिर्फ दूसरों के लिए।

वह कोई एक नहीं है,
वह एक चेहरा नहीं,
वह एक जाति, एक नाम, एक भाषा नहीं।
वह वह है,
जिसे हम अक्सर भूल जाते हैं
जब दीवारें खड़ी होती हैं
और छतें सिर पर आती हैं।

उसके हाथ में कोई ताज नहीं,
पर उंगलियों में छाले हैं
जिन्होंने समय को गढ़ा है।

उसकी पीठ पर कोई झंडा नहीं,
पर वह रोज़ एक युग ढोता है-
कभी ईंटों में, कभी खेतों में,
कभी मशीनों के शोर में,
कभी नींद से चुराए गए सपनों में।

वह चुप है-
लेकिन उसकी चुप्पी
इतिहास की सबसे गूंजती आवाज़ है।
वह रोता नहीं,
पर हर आँसू की पीठ पर उसका नाम लिखा है।
वह लड़ता है-
बिना हथियार, बिना हिंसा के,
सिर्फ अपने श्रम से।

वह मजदूर है -
जिसने खून से रास्ते सींचे,
पसीने से आकाश रंगा,
और फिर भी इतिहास की किताबों में
उसके लिए कोई जगह नहीं।

पर आज,
जब हवा में फिर से शोषण की गंध है,
जब कंधों से ज़िम्मेदारियों का बोझ
हड्डियों में दरारें बना रहा है-
उसकी याद आई है।

आज का दिन-
सिर्फ एक दिन नहीं है,
यह उसकी गाथा है,
जो हर हथौड़ी की चोट में दर्ज है,
हर फावड़े की नोक पर उगी है।

हे श्रम के सपूत,
तू अनाम है- फिर भी सबसे महान।
तेरी भुजाओं में पृथ्वी की धड़कन है,
तेरे पैरों में युगों की गति।

तू मिटेगा नहीं,
क्योंकि तू रचता है-
हर दिन, हर युग, हर क्षण,
अपने श्रम से एक नया इतिहास।

शाम से महफ़िल

उम्र की चुप सी झुर्रियों में
जब दिन का उजास थकने लगे,
साँझ की चादर ओढ़े क्षितिज
कुछ गुमसुम सा कुछ कहने लगे।

वक़्त की सरिता बह चली धीमी,
बचपन कहीं रेत पर सो गया,
यौवन की चंचल अठखेलियाँ
धीरे-धीरे मौन हो गया।

उम्र कहती है- "अब संध्या आई,
रुक जा मुसाफ़िर, अब विश्राम है",
पर भीतर कोई दीपक जलता,
कहता- "अभी तो शुरुआत का पैगाम है!"

दिल की वीणा छेड़ रही तानें,
मन की वीणा पर सुर जागे हैं,
कवि कमल के स्वप्नों की रंगीनी
अब जीवन के चित्र में लागे हैं।

महफ़िलें तो शाम से खिलती हैं,
जब धूप नर्म सी हो जाती है,
चाँदनी गुनगुनाती है गीत कोई,
और हवा भी मद्धम हो जाती है।

अब न शिकवा न कोई उलाहना,
हर क्षण में सौंदर्य बरसता है,
जिन्हें समय ने वृद्ध कहा यारों,
वो ही जीवन रस बरसता है।

तो आओ! बैठें कुछ पल साथ,
गीत लिखें हम अंत की बात,
क्योंकि अंत नहीं, ये नवल शुरुआत-
जहाँ मन का दीप फिर जल उठे।

मैं - एक अनन्त बोध

मैं हूँ-
शब्दों की गहराइयों से उपजा
मौन का संगीत,
मैं हूँ-
वह स्वप्न जो पलकों के
भीतर भी नहीं समाता।

मैं हूँ-
सकारात्मक सोच की एक लौ,
जो निराशा की अंधेरी सुरंग में
रोशनी बनकर जलती है।
मैं सीप में पड़ी ओस की बूँद हूँ,
मूक, शीतल, पर मूल्यवान-
जिसे स्पर्श करते ही
समय रुक-सा जाता है।

मैं हूँ-
वह वेग, जो नदियों में बहता है,
जो पर्वतों से टकराकर भी
अपना मार्ग नहीं छोड़ता।
मैं गति हूँ-
जो रुकती नहीं,
जो पीछे मुड़कर देखती नहीं।
मेरे कदमों की थाप में
सृजन की धड़कन है।

मैं हूँ-
सागर की गंभीरता,
जहाँ ऊपरी लहरों का उथलापन
भी मेरी गहराई को छू नहीं पाता।
मेरे भीतर अनगिनत रहस्य हैं-
भावनाओं के मोती,
दर्द के शंख,
और मौन की सीपियाँ।
मैं वह भी हूँ-
जो आकाश को निहारकर
अपने भीतर अंतरिक्ष खोजता है।
मैं एक पत्ता हूँ-
जो हवा से कहता है
"ले चल जहाँ तू चाहे",
फिर भी अपनी जड़ें
धरती में सहेजे रखता है।

मैं-
कभी एक स्मित हूँ किसी बालक की मुस्कान में,
कभी एक आह, किसी टूटी हुई आशा की।
मैं-
कभी एक रंग, किसी उदास शाम का,
कभी एक राग, किसी जागती हुई आत्मा का।

मैं हूँ- स्वयं में सम्पूर्ण,
प्रकृति की एक कविता
जो हर पल लिखी जाती है
बिना किसी कलम के।

विलय की वेला

वो पगले स्वर
जैसे संध्या की वीणा पर
धीरे से झनक उठे-
ना स्पर्श, ना स्वर,
फिर भी मन की वीणा की हर तार
एक अनकही धुन में काँप उठी।

छायाएं लहराईं
जैसे मधु बेला में
कोई स्वप्न मूर्त हो उठा हो,
नयन क्षण भर को ठिठके-
वो नहीं थे,
फिर भी चारों ओर उनकी गंध फैली थी
जैसे रात्रि की प्रथम बूँद
कुंतल पर गिर पड़ी हो।

जीवन-
जो अब तक खड़खड़ाता रहा
दिनों की कठोर धूप में,
आज चुपचाप
ओस सी बरस पड़ी अंतर में,
दबे पांव,
बिना कुछ कहे,
बिना कुछ छुए।

क्या यह उनका जाना था?
या मेरा कुछ छूट जाना?
शायद यही जीवन है-
एक सौम्य विलय,
एक चुप विदाई,
जैसे कि प्रभात की पहली किरण
धीरे से अंधकार का आंचल सरका देती है।
-अनुगूँज वहीं रह जाती है...

दबे पांव ज़िंदगी

वो मेरे पास से गुजरे
ना कोई आहट,
ना कोई दस्तक,
बस हवा की एक थरथराहट सी हुई,
और मैं ठिठक गया-
जैसे वक़्त एक पल को ठहर गया हो।

ना निगाहें मिलीं,
ना लफ़्ज़ों ने राह तक़रीब की,
पर उस एक पल में
कुछ टूट कर बिखर गया भीतर,
कुछ जागा जो वर्षों से सोया था।

कभी सोचा नहीं था
कि ज़िंदगी भी
चुपचाप यूं दरकिनार कर सकती है,
जैसे कोई सपना
बिना विदा कहे आंखों से फिसल जाए।

क्या यही होता है
जब वजूद की सरहदों पर
किसी की मौन उपस्थिति
तूफ़ान सी दस्तक देती है?
या शायद,
ये वही पल होता है
जब एहसास-
ज़िंदगी की असल पहचान बन जाते हैं।

दबे पांव आई थी वो,
जैसे ज़िंदगी आई हो-
और चले जाने के बाद
एक सन्नाटा छोड़ गई हो,
जिसमें मैं अब भी सांस ले रहा हूँ।

उम्मीद की धनक

नाउम्मीदी के साये में भी जब स्वप्न झिलमिलाते हैं,
तब अंधेरों के भीतर छुपे दीपक मुस्कुराते हैं।
बुझे मन की राख में दबी जो चिनगारी है कहीं,
उसे हवा दो ज़रा- उम्मीद की महक आने दो।

घना कोहरा है, दिशाएँ भी मौन साधे खड़ी हैं,
साँझ की चुप्पी में सिसकती कई कहानियाँ पड़ी हैं।
पर समय की रेत पर सूरज की आहट बाकी है,
उसकी पहली किरण में स्वर्णिम चमक आने दो।

पथ टेढ़ा है, कांटे हैं, पाँव लहू-लुहान हुए,
रुकना नहीं, टूटे मन कर्म में विश्वास लिए हुए।
श्रम के सुरों में रचो जीवन की नई रचना,
हर आहट में चुपचाप मेहनत की खनक आने दो।

बड़े हो गए हैं, पर मन का एक कोना बालक बना,
जहाँ कंचों की चमक है, और चंद्रकथा है कुछ सुना-सुना।
उस कोने की खिड़की से बचपन झाँकता कभी-कभी,
थोड़ा ठहरो- बीते लम्हों की झलक आने दो।

रातें जागीं, आँखों में अब स्वप्न भी थके-थके हैं,
पर दिन की गोद में सपनों के गीत अभी बचे हैं।
जब किरनों की परियाँ माथे पर चूमा करती थीं,
फिर से चाहो वो मीठी ख्वाबों की चहक आने दो।

बुझ गया दीया, कहने को बस राख रह गई है,
पर इस राख में भी दिल की रोशनी महक गई है।
काली तन्हाई में एक इंद्रधनुष बसंत सा,
उसकी सौंधी आभा में सतरंगी धनक आने दो।

अब समझ में आता है...

अब बुरा नहीं लगता किसी की बात का
न दिल दुखता है,
न आंखें भीगती हैं
क्योंकि अब समझ में आने लगा है-
हर कहा हुआ शब्द,
हर अनकहा ताना
अब बोझ नहीं रहा।

जो अपने हैं,
वो चुप रहते हैं,
कभी सन्नाटों में हाल कह जाते हैं।
वो उँगलियाँ नहीं उठाते,
बस हथेली थाम लेते हैं
जब मन डगमगाने लगता है।

और जो अपने नहीं,
वो चीखते हैं, समझाते हैं, जताते हैं
मानो एक वाक्य से
रिश्ते की जड़ें सींच देंगे।
पर अब ये भ्रम भी छूट गया है।

अब शब्दों में नहीं खोजते अपनापन,
अब सन्नाटों से बात करते हैं।
अब किसी की उपेक्षा में भी
कोई अपेक्षा नहीं बचती।

कभी लगता था-
चुप्पी क्रूर होती है,
अब लगता है-
चुप रहना भी एक करुणा है
जो अपनों को बिंधने से बचा लेती है।

अब किसी की बात चुभती नहीं,
क्योंकि भीतर की ज़मीन
अब काँटों को पहचानने लगी है।
अब सिर्फ वो दिखते हैं
जो बिना कहे भी
हमारे दर्द को समझ लेते हैं।

रिश्ते अब शब्दों से नहीं,
सहानुभूति की नमी से पलते हैं।
अब समझ में आता है
कि
जो अपना है, वो सुना नहीं पाता
और
जो सुनाता है...
वो कभी अपना था ही नहीं।

संयोग की छाया में

प्रभा की प्रथम रेख जब उर में उतरी,
नीरव पलों की कोई ध्वनि झनक उठी।
नयन न खोले थे अभी, पर अनुभूति ने कहा-
"कोई समीप है, कोई अभी-अभी मिला है।"

मन की वीणा पर बजती तान-सी,
किसी अपरिचित की परिचय गाथा रचती थी।
पग छू न सके उस मिलन को,
पर अंतर्मन ने पहचान लिया उसे-
प्रकृति की मौन योजना।

बिना कहे जो कह गया,
जो अनकहे को अर्थ दे गया,
वही तो था वह संयोग-
जिसे समय की नदी तक नहीं समझ पाई।

हे प्रकृति! तू क्यों भेजती है किसी को,
अधूरे स्वप्नों में पूरा कर जाने को?
कभी एक क्षण के लिए,
कभी जीवनभर साथ चलने को,
पर हर बार कोई संदेश लिए।

वह जो मिलन है, वह केवल मृगतृष्णा नहीं,
वह एक दर्पण है - आत्मा की अनकही परतों का।
वह एक दीप है - अंधेरों में अपने प्रकाश का।
वह एक पुष्प है- जो न जन्म चाहता है, न मरण,
सिर्फ सुवास बनकर हृदय में जीता है।

इसलिए जब कोई मिले,
तो यूँ न कहो- "बस यूँ ही आया था,"
क्योंकि हर आगंतुक
ईश्वर की कलम से लिखा एक श्लोक होता है।

उसे पढ़ो,
समझो,
और समय के कागज़ पर सहेज लो।
क्योंकि यह संयोग नहीं,
संवेदना की अमिट लिपि है।

छूटते यथार्थ के छोर

स्निग्ध निशा की छाया में बैठा,
मन का मौन मधुर स्वर सुनता
भाव-सरित की उमड़ती लहरें,
मुझसे मेरे ही प्रश्न बुनता।

बुद्धि कहे- "जग का पथ निष्ठुर",
हृदय कहे- "सपनों में गति है";
विचल व्यथा की अनुगूँजों में,
छिपी कहीं कोई ज्योति ज्वलित है।

दृष्टि गई यथार्थ की ओर, पर-
वह छाया सा छिटक गया;
रूप सजीव था दृष्टिपथ में,
किन्तु स्पर्श से बच निकल गया।

काँप रहा था तर्क-बन्ध का,
सूक्ष्म समूहन, छद्म विचार;
भाव-बिंब उस पार खड़े थे,
लेकर अज्ञातों का श्रृंगार।

उर में उठता वह स्वर अनिर्वच,
जो मौन पलों में बह जाता;
जिसको पाकर भी खो देता,
प्राणी जब जग से रह जाता।

प्रश्न उठे- "क्यों यह माया है?"
"क्यों छली हृदय की चाह?"
"क्यों तुच्छ हुए वे स्नेह-बन्ध,
जो थे जीवन के दीप्त राह?"

उत्तर सब थे परे क्षितिज के,
मूक समय के आलिंगन में;
एक व्यथा बन कर रह जाती,
स्वप्न-बसी उस जर्जर तन में।

फिर भी मैं मुस्काया क्षण भर,
क्योंकि उस छाया के पार,
कुछ था- जो न देखा जाता,
पर जिसकी थी मुझमें पुकार।

दर्पण के पार

टूट गया वह दर्पण निर्मम,
जिसमें तुम भी मैं भी थे
स्मृति-छाया बनकर चलती,
वे दो रूप- सहमे-सहमे से।

उस क्षण की नर्म चिरायंधी में,
जब हँसी बनी थी आँसू की छाया,
मुझमें जो रोई थी ममता,
वह तुम में बनकर रह गई माया।

मैं खोज रहा था स्वयं को-
उस दर्पण की किरणों में,
पर हर प्रतिबिम्ब था चुप,
और मौन बसा था मन के कणों में।

प्रिय! उस खेल की स्मृति आज भी
उर में दीप जला जाती है,
जहाँ आँखमिचौनी की चुप्पी में
आत्मा आत्मा को छू जाती है।

भ्रम में गूँथा वह संसार
जहाँ मैं 'तुम' हुआ- तुम 'मैं',
और हम दोनों ने ही
स्वयं को खो दिया उस क्षण में।

जो हँसी वहाँ फूटती थी-
वह सिसकी थी छुपी हुई;
जो नयनों से टपकी थी-
वह मुस्कान थी बुझी हुई।

अश्रु-हास का यही आलोक
जब दर्पण पर बिखर गया,
तो उसमें जो जीवन था
किरण-कण बन बिखर गया।

अब मैं नहीं खोजता प्रतिबिंब,
न आकृतियाँ, न माया का भ्रम;
मैं बस टुकड़ों में जीता हूँ,
उस टूटे दर्पण के संग।

पराकाष्ठा

तुम हो नहीं,
पर श्वास-श्वास में गुँथे हो तुम,
जैसे वायुमण्डल में गुप्त सुगंध,
जैसे चाँदनी में कोई मौन स्वर लहरी।

मेरा हृदय-
तुम्हारे स्मरणों की वीणा बन
नित्य रचता है अनगिनत राग,
जो न सुने किसी ने,
पर जिन्हें मैं जीती हूँ हर पल।

तुम्हारी अनुपस्थिति भी
अब एक उपस्थिति बन चुकी है-
एक स्थायी छाया,
जो चलती है मेरे साथ,
मौन में भी मुखर,
शून्य में भी पूर्ण।

कभी-कभी लगता है,
तुम एक किरण हो-
जो नभ की आँखों से उतर
मेरे अंतर में समा गई हो,
जिसे न कोई छू सकता है,
न कोई बाँध सकता है।

मैं जब नयन मूँदती हूँ,
तब तुम दृष्टि बनकर उभरते हो-
कभी वनों की सिहरन में,
कभी किसी गंध की कोमल छुअन में,
और कभी हृदय की थरथराती प्रार्थना में।

यह दूरियाँ...
अब बन्धन नहीं,
बल्कि साधना बन गई हैं,
जहाँ तुम्हारा न मिलना ही
मिलन का परम क्षण बन गया है।

शायद प्रेम की पराकाष्ठा यही है-
जहाँ वियोग भी एक योग हो जाए,
और अनुपस्थिति भी
पूर्णता का आलोक बन जाए।

मिट्टी की जिज्ञासा

लम्हा–लम्हा जोड़ा जीवन,
साँसों की यह बुनावट थी।
हर पल जो थमा, वह लगता
मानो कोई इबारत थी।

फिर भी क्यों यह क्षीण बंधन,
धीरे-धीरे छूट रहा?
क्यों मिट्टी से मिलने का ही
मन में संकल्प छूट रहा?

क्या जीवन केवल यात्रा है,
या कोई अंतिम साध नहीं?
क्या मृत्यु महज विराम है बस,
या फिर अगला प्रस्थान कहीं?

मन पूछे यह रहस्य हरदम-
क्या हूँ मैं? और क्यों हूँ मैं?
क्या जो भी दिखता, वह ही सत्य,
या उस पार भी कुछ हूँ मैं?

धरती बोले- "मैं भी हूँ क्षण,
और अनंत का भी आधार।
तू भी है बस एक रेखा सा,
जो जोड़ रहा संसार!"

बूँदें बनकर गिरती हैं हम,
सागर में फिर मिल जाती हैं।
कभी कंठ में प्यास बनें तो,
कभी बादल बन जाती हैं।

हर मिट्टी के कण में बसी
कोई व्यथा, कोई साधना।
हर क्षण जीवन से जुड़ी हुई
किसी चेतना की भावना।
मैं तो बस एक राही हूँ-
मुझमें कुछ प्रश्न पुराने हैं।
मुक्ति और मिलन के पथ पर
दुख-सुख के राग सुहाने हैं।

प्रेम मिला, पर पूर्ण न हो सका,
पर उस अपूर्ण में पूर्णता है।
क्योंकि जो नहीं मिला जीवन में,
वही आत्मा की अनुभूति बना है।

स्वयं से युद्ध

यह कोई रणभूमि नहीं,
न कोई सेनापति, न कोई जयघोष।
यह युद्ध मेरे भीतर है-
जहाँ शत्रु और सेनानी एक ही चेहरा हैं।
दर्पण में हर सुबह दिखती है वह आंखें,
जो निर्णय नहीं ले पातीं-
कि किस मार्ग पर चलना है:
धर्म का, या स्वार्थ का।

मैं जूझ रहा हूँ-
मृत्यु के भय से नहीं,
जीवन के उद्देश्यहीन बहाव से।
हर दिन एक परीक्षा है,
हर रात एक आत्मचिंतन।
कभी लगता है हार गया,
फिर याद आता है-
रण में तो अभी उतरा ही नहीं।

क्योंकि यह युद्ध अस्त्रों से नहीं लड़ा जाता,
यह चेतना की तलवारों से लड़ा जाता है।
जहाँ सत्य और असत्य का भेद धुंधला है,
जहाँ नैतिकता धूप-छाँव सी बदलती है
समाज की स्वीकृति के अनुसार।

मैंने देखा है-
धर्म के वस्त्र में अनैतिकता का नृत्य,
और अधर्म के रास्तों पर
कभी-कभी करुणा के फूल खिलते हैं।
क्या सच में कोई स्पष्ट रेखा है
जो अच्छाई और बुराई को बाँट सके?

भौतिकता हर क्षण मुझसे कहती है-
“चलो, सुख खोजो!”
पर आत्मा मौन रहकर भी कहती है-
“पहचानों, तुम कौन हो?”

धनुष रखा है अब भी कंधे पर,
पर तीर चलाना आसान नहीं।
क्योंकि जिस ओर निशाना साधूं,
उसी में कहीं मेरा कोई अंश होता है।
शत्रु बाहर नहीं, भीतर है-
वह भय, वह संदेह, वह स्वार्थ
जो हर निर्णय से पहले उठ खड़े होते हैं।

मैं जानता हूँ-
जीवन और मृत्यु दोनों ही
विवेक की परीक्षा हैं।
एक के पहले भ्रम, दूसरे के बाद मौन।
और इन दोनों के बीच ही जीता है
वह सत्य, जो अनकहा है, अदृश्य है-
पर अनुभूति में जलता है,
एक न बुझने वाली ज्वाला की तरह।

इसलिए यह युद्ध समाप्त नहीं होगा,
जब तक मैं स्वयं को पा न लूँ।
जब तक मेरी अंतरात्मा
मेरे बाह्य अस्तित्व से एक न हो जाए।

और तब शायद...
रणभेरी भीतर बजेगी,
शत्रु मुझसे नहीं,
मुझमें हार जाएगा।
और तब कह सकूँगा-
हाँ, यह युद्ध स्वयं से था,
और अब मैं विजयी हूँ।

अंतःरण का आलोक

जाग रे पथिक!
तू स्वयं की गहराइयों का अन्वेषक है,
यह जो ज्वाला दहक रही अंतर्मन में-
कोई लौकिक अग्नि नहीं,
यह आत्मा की हूक है,
यह चेतना की चिंगारी है
जो अंधकार को चीरकर
सत्य का आलोक माँगती है।

मैं कौन हूँ-
वह जो शब्दों में गूँजता है,
या वह जो मौन में डूबा रहता है?
शरीर एक पात्र है,
पर आत्मा...?
वह तो क्षितिज की तरह
अनंत में विलीन होती जाती है।

जीवन कोई उत्सव नहीं-
जहाँ पुष्पवृष्टि हो हर प्रयास पर।
यह एक तप है,
एक युद्ध है,
जहाँ शस्त्र नहीं-
संवेदनाएँ धार हैं,
और सत्य-
एक अदृश्य पताका
जो केवल अन्तर्मन देख सकता है।

मृत्यु कोई अंत नहीं,
वह तो एक मार्ग है लौटने का-
उस स्रोत की ओर
जहाँ से चेतना फूटती है।
और जीवन...?
वह तो एक अल्पविराम है,
ब्रह्म के गीत में।
भय मेरे भीतर नाचता है-
कभी पिता की कठोर दृष्टि में,
कभी समाज की ऊँगलियों में,
तो कभी
अपने ही विचारों के कोलाहल में।

और फिर भी,
जब मैं वटवृक्ष की छाया में
आँखें मूँद लेता हूँ-
एक स्वर सुनाई देता है-
"तू अमर है।"
हाँ, भीतर कहीं कोई ऋषि अब भी बैठा है,
ध्यानमग्न, निर्विकार।

यह युद्ध बाह्य नहीं-
यह चित्त का युद्ध है।
धर्म और अधर्म अब रेखाओं में नहीं,
भावनाओं में हैं।
जहाँ करुणा धर्म है,
और मोह अधर्म।

नयनों में जल है-
पर वह दुख का नहीं,
अपूर्व बोध का है।
मैं अब जानता हूँ-
धनुष धरे रहना पराजय है,
पर उसे उठाना...
वह केवल तभी संभव है
जब लक्ष्य केवल "मैं" न हो,
बल्कि "हम" हो।

मेरे तरकश में अब भी अग्निबाण हैं-
पर मैं उन्हें चलाऊँगा,
केवल तब,
जब युद्ध नहीं,
शांति ही विजय प्रतीत हो।

"ओ आत्मा! तू वासंती वायु बन,
चेतना के पुष्प खिला।
यह युद्ध तेरा अंत नहीं,
आरंभ है-
उदय होते सूर्य का।"

बीज के भीतर

एक दिन वह मिला-
अदम्य जिज्ञासु,
तार्किकता उसकी थकान नहीं थी,
हर बीज को तोड़ता रहा
जैसे खोलने से ही
सत्य मिल जाएगा।

मैंने कहा-
बीज को मत तोड़ो,
उसके भीतर
एक पेड़ है,
जिसे उगने के लिए
सिर्फ विश्वास चाहिए,
सिर्फ धैर्य।

वह मुस्कराया,
जैसे मेरी बात
किसी पुरानी कथा जैसी हो।
उसने कहा-
जो नहीं देखा, वह कहाँ है?
मैंने देखा-
उसने नहीं देखा।

वह बीजों की राख में
अर्थ ढूँढता रहा,
मैं जड़ों की गहराई में
हरियाली की प्रतीक्षा करता रहा।

अब भी वह खोजता है
उत्तर-
बाहर की परतों में।
और मैं,
हर चुप्पी में
एक वृक्ष उगते देखता हूँ।

परिवर्तन की सांझ

न जाने किस अज्ञात सिहरन ने
मुझसे मेरा 'मैं' चुरा लिया है,
अब वो चिर-परिचित साँझ भी
किसी परछाई की कथा सी लगती है।

वो गलियाँ, जहाँ स्वप्न झिलमिलाते थे,
अब निर्वर्ण धुंध में डूब गई हैं,
और पग, जो कभी उमंग से भरते थे,
आज निशब्द लौट आते हैं।

स्वर, जो मन के वीणा-पक्ष पर थिरकते थे,
अब अंत: कंदराओं में खो गए हैं,
आँखें अब भी नम हैं, पर अश्रु
जैसे तपते बादलों की संकोच-गाथा बन गए हैं।

रिश्ते अब अलिखित संवाद बन
मौन के गलियारों से गुजरते हैं,
और हृदय की थरथराती लौ
किसी अपूर्ण प्रार्थना-सी काँपती है।

शायद समय ने
मुझसे मेरा आत्म-संगीत छीन लिया है,
या यह आत्मा ही
अब किसी गहन अंतरिक्ष में खो गई है।

कुछ तो टूटा है-
शायद स्वर,
शायद सपने,
पता नहीं क्या बदला है,
बस अब पहले जैसा कुछ नहीं है।
या बस वह अनाम चिर-आकांक्षा
जो कभी 'पहले जैसा' कहलाती थी।

कहाँ साथ छूटा?

इरादा था साथ निभाने का,
हर मंज़िल तक साथ जाने का,
थामे थे हमने हाथ कभी,
हर मोड़ पे गीत सुनाने का।

पर राह बदल गई चुपचाप,
कुछ कहे बिना, कुछ सुने बिन,
वो रुके नहीं, मैं थम सा गया,
बस रह गये भीगे मन-नयन।

हमने तो चाहा एक सवेरा,
जिसमें दोनों साथ चलें,
पर उनकी नज़रों को भा गया,
कोई और चाँद का मंज़र नया।

अब यादें ही संगी हैं मेरी,
और खामोशी है गीत बनी,
जो अधूरी धुन में गाती है,
एक बीती प्रीत बनी।

हर वादा हवा सा उड़ गया,
हर सपना धुआँ बन बह गया,
हमने तो दिल से चाहा था,
पर शायद वक्त ही बदल गया।

संग चलने का वादा किया था,
पर राहों का रंग बदल गया।
हमने तो चाँद मांग लिया था,
वो कह गए- अब मन बदल गया।

अब ख्वाबों की राहें सुनसान हैं,
और दिल में कुछ सवाल हैं,
क्या हम ही थे बस देर से,
या उनकी मंज़िल ही और थी कहीं?

मैं और मेरी ख्वाहिशें

ख्वाहिशें...
मैं समझता था, वे बाहर की चीज़ हैं-
दुनिया के रंग,
किसी और की आँखों में चमकते स्वप्न।

पर जब भीतर झाँका,
तो पाया,
वे तो मेरे ही मन की गहराइयों से उठी थीं-
जैसे कोई मौन नदी,
जो सतह पर कुछ नहीं कहती
पर भीतर बहुत कुछ बहा ले जाती है।

कुछ ख्वाहिशें बनीं मेरी पहचान,
जिन्होंने मुझे मुझसे मिलवाया-
जो कभी प्रश्न बनीं
और कभी उत्तर की तरह सामने आईं।

कुछ अधूरी रहीं,
पर अधूरी रहकर भी
सिखा गईं कि हर इच्छा का पूरा होना
ज़रूरी नहीं होता
स्वयं को जानने के लिए।

उनके छूटने में भी
एक दिशा थी,
एक संकेत कि
जो मैं खोज रहा हूँ,
वह बाहर नहीं-
भीतर ही है,
निःशब्द, लेकिन सजीव।

अब मैं
हर ख्वाहिश को
एक दर्पण की तरह देखता हूँ-
जो मेरे भीतर के चेहरे
एक-एक कर उजागर करती हैं।

एक खयाल

मैं स्वरहीन वीणा की थरथराहट,
अश्रु-सा रिसा
मूक मन की एक छवि हूँ-
स्पर्श मात्र से हृदय के तल में
उमग उठता हूँ क्षणभर।

एक कल्पना हूँ-
चिर प्रतीक्षा में लिपटी हुई,
तू यदि स्मरण कर सके,
तो कर लेना मुझे
नील नभ के छोर पर
बिखरी उस मंद मुस्कान-सा।

मैं हूँ न भूत, न भविष्य,
मैं तो बस उस अंतरतम क्षण की
धुंधली चितेरी स्मृति,
जो तेरी आत्मा के
सन्नाटे में बोल उठती है।

विस्मरण की रेत पर
मेरे पदचिन्ह नहीं,
पर भावों की ओसबूंद
अब भी तुम्हारे चित्त पर
थरथराती है चुपचाप।

भूल जाने को जग देगा
तुझे कई शाश्वत कारण,
पर स्मरण के एक पल में
मैं बन उठूँगा
तेरे ही अंत:प्रकाश की
क्लांत अभिलाषा।

हम जिन्होंने काल को चुनौती दी

हम-
जिन्होंने काल के अबाध रथ का
अभिमानी पहिया थामने का
दृढ़ संकल्प किया था,
ना केवल रोका उसे
बल्कि चाहा-
कि दिशा बदले उसकी
संवेदनाओं की ओर।

हम चले थे
हाथों में धूप का दीप लेकर,
जहाँ अंधकार था
सदियों की चुप्पियों से भरा,
हमने उसमें बोये
विचारों के बीज,
प्रतिरोध के स्वर,
और आत्मा की पुकारें।

हमने समय को केवल जिया नहीं,
उसे गढ़ा-
हर पल में एक चिनगारी भरकर,
हर शब्द में एक क्रांति रखकर।
हमने उसे रुकने को नहीं कहा,
बल्कि समझाया-
कि प्रगति वह नहीं
जो रौंद दे भावनाओं की ज़मीन।

हम थे,
वह थमी हुई साँस
जो तूफ़ान से पहले उठी थी,
वह मौन
जिसमें इतिहास की पदचापें
धड़कती थीं।
हमने भविष्य की आँखों में
सच दिखाने की चेष्टा की-
बिना डर के, बिना मुखौटे के।

हम-
ना केवल चलने वाले
बल्कि पथ बनाने वाले थे,
जिन्होंने समय से कहा-
"चल, पर उस ओर
जहाँ मनुष्य अब भी मनुष्य रहे।"

अंतर की आराधना

मैं साधक,
अविराम भटकता अंतर के अनजाने पथों पर,
जहाँ दिशाएँ भी मौन हैं,
तुम साधना -
नीरव दीपशिखा-सी
मेरे अंतर-बोध को आलोकित करती।

मैं भाव-
क्षणिक, स्पंदित, छायाचित्र-सा
जैसे संध्या की संकोचिनी रेखा,
तुम भावना-
निशा की चंचल चाँदनी-सी
मौन में गीत बन बहती।

मैं लफ्ज़-
धुंधलाए से, व्याकुल, खोजते अर्थ,
तुम गीत-
जैसे पवन में बसी कोई सूक्ष्म वीणा,
हर स्वर में चुप्पी का मधुर उद्गार।

मैं प्रीत-
अधूरी, अनबोली,
तुम मीत-
जो चुपचाप मेरी नज़रों से संवाद रचते,
और मेरे मौन को सजीव कर जाते।

मैं हृदय-
अंतरिक्ष-सा विशाल, किंतु सूना,
तुम धड़कन-
उस सूनेपन में प्रथम स्पंदन,
जो जीवन की प्रतिध्वनि बनती।

तुम ही वह दिव्य ज्ञान-
गीता की मोह-भंगिनी वाणी,
वेदों की सृष्टि-गुंजार,
कुरान की इबादत-सी पाक,
जो मेरे शून्य को ब्रह्म कर दे।

तुम मेरे अंतर्मन की तीर्थ-शक्ति,
चार धामों की ज्योति-सी ज्योत्सना,
जहाँ आत्मा झुकती है-
न केवल भक्ति में,
वरन् उस अकथ मिलन में
जो शब्दातीत है,
जो केवल अनुभूति है।

मैं ही तत्व हूँ

मैं शास्त्र हूँ-
हर अक्षर में छिपा चेतना का बीज,
जो जन्म देता है ज्ञान को,
धार देता है धर्म को।
मैं शस्त्र हूँ-
ना केवल हाथों में,
बल्कि विचारों में भी तेज हूँ,
जो अधर्म पर प्रहार करे,
और सृजन को संरक्षित रखे।

मैं अजयी हूँ-
क्योंकि मेरा युद्ध
केवल शत्रु से नहीं,
अंधकार से है,
जो भीतर भी है और बाहर भी।
मैं अमर हूँ-
क्योंकि मैं समय के पार हूँ,
युद्ध के मैदान से लेकर ध्यान की गहराइयों तक।

मैं शंकर हूँ-
विनाश और सृजन का अद्वितीय संगम,
जिसकी जटाओं से बहती है गंगा,
जो विष पीकर भी नीलकंठ कहलाता है।
मैं वेद हूँ-
ध्वनि हूँ, शब्द हूँ,
जिससे निकली सृष्टि की पहली आहट।

मैं वायु से भी तेज हूँ-
क्योंकि मैं विचार हूँ,
जो सीमाओं में नहीं बंधता।
मैं वह हूँ
जो असुरता के विरुद्ध खड़ा होता है
हर युग में, हर रूप में।

मैं सूर्य की प्रचंडता हूँ-
जैसे ताप में तपस्या है,
जैसे उजाले में विश्वास है।
मैं ब्रह्मांड के कण-कण में समाया
एक अदृश्य प्रकाश स्रोत हूँ।

धरती, आकाश, पाताल-
मुझमें समाहित हैं सब,
क्योंकि मैं केवल शरीर नहीं,
मैं चेतन भी हूँ, चिरंतन भी।

और जब तुम मेरी आराधना करो,
तो जानो,
तुम केवल शिव को नहीं,
अपने भीतर के शिव को जगा रहे हो-
जो शांति भी है और शक्ति भी।

अभी तो आग़ाज़ है

अभी से मत थक, ऐ ज़िंदगी,
तेरे आँचल में कुछ अधूरी सांझें काँप रही हैं,
अभी तो स्वप्न की थकी पलकों पर
ओस सी कुछ आशाएँ टिकी हैं।

तेरे पदचिह्नों पर
कुछ म्लान कुसुम आज भी मुस्कुरा रहे हैं,
और सूनी दिशाओं में
कोई मौन पथिक अब भी
तेरे स्पर्श की प्रतीक्षा में खड़ा है।

हमने समय की तपती रेत पर
अपने नयन-कण गिराए हैं,
और उन आँसुओं में
कोई मधुर स्मृति-
आज भी करुण स्वर में गा रही है।

मगर जब तू ही डगमगाने लगे,
तो फिर कौन थामेगा वो दीपक
जो तूफ़ानों में भी
शांत रहकर जलता रहा?

हमने एक चेहरा देखा था-
नीरव नयनों में
नीलाकाश की गंभीरता थी,
वाणी में-
मानो करुणा की वीणा झंकृत होती हो।

तब लगा-
इस काँच जैसे जीवन में
कोई कोमल सच्चाई अभी भी साँस ले रही है,
कि व्यथा की चादर में
वफ़ा की गरिमा अब भी बसी है।

तो चल,
इन पथरीली राहों पर
अपने अंतरतम से बात करें-
शायद कोई भूला हुआ स्वर
फिर से जाग जाए।

और जब पवन की हिलती डालियों में
अपना ही नाम पुकारे कोई,
तो जानना-
कि तू अकेली नहीं है,
तू- स्वयम् एक गीत है,
जो व्यथा में जन्म लेता है
और मौन में अमर हो जाता है।

शब्दों का ताप

शब्द-
ये निःशब्द से उपजे स्वर,
मन की गहराइयों में गूँजते
कभी बूँद बनकर टपकते हैं पलकों पर,
तो कभी अंगार बनकर झुलसा जाते हैं आत्मा की पीठ।

इनकी आभा में
कभी सौम्य चाँदनी की शीतलता है,
तो कभी दोपहरी की धधकती हुई धूप।
तुम सुनो इन्हें-
जब वे मौन में चुपचाप उतरते हैं,
तब वे सबसे अधिक बोलते हैं।

कभी किसी की हँसी में
गूँजता है एक शब्द,
जो वर्षों की पीड़ा को ओस सा धो देता है।
और कभी,
एक ही स्वर-
भूचाल बनकर बिखेर देता है रिश्तों की चूलें।

ये शब्द,
सिर्फ भाषा नहीं,
मन का दर्पण हैं,
संवेदना की थरथराहट हैं,
और आत्मा का तापमान।

तभी तो-
कभी युगों को जोड़ते हैं,
और कभी-
अरण्य में जलते हुए पत्तों की तरह
सभ्यताओं को राख बना देते हैं।

ताप है इनमें,
पर छाँव भी।

दिल की धड़कनें

कितनी मासूम होती हैं ये दिल की धड़कनें-
ना किसी से शिकायत करती हैं,
ना किसी उत्तर की प्रतीक्षा में ठहरती हैं।
सुनने वाला कोई हो या ना हो,
ये फिर भी अपनी लय में चलती रहती हैं-
स्नेह की किसी पुरानी स्मृति पर मुस्कुराती,
और अनकहे दर्द पर मौन रोती।

कभी वो किसी नाम के उच्चारण पर तेज़ हो जाती हैं,
जैसे पहचान गई हों कोई अपना,
तो कभी
किसी चुप पल में
बस धीमे से थमकर पूछती हैं-
“अब कौन बचा है यहाँ सुनने वाला?”

इनकी मासूमियत में छिपे होते हैं
हज़ारों अधूरे सपने,
कभी आँखों से बह जाते हैं,
तो कभी तकिये की सिलवटों में
रातभर सिसकते रहते हैं।

दिल की ये धड़कनें
कोई भाषण नहीं देतीं,
नारे नहीं लगातीं,
बस अपने ही स्वर में
प्रेम का गीत रचती हैं,
हर धक-धक में एक कविता पलती है,
हर थिरकन में एक चाह छुपी होती है।

कभी किसी की हँसी पर खिल उठती हैं,
तो कभी किसी की बेरुख़ी से बुझ-सी जाती हैं,
मगर रुकती नहीं-
क्योंकि मासूम दिलों को
मक़सद नहीं चाहिए जीने के लिए,
सिर्फ एक एहसास चाहिए
कि कोई कहीं है,
जो सच में महसूस करता है।

कितनी मासूम होती हैं
ये दिल की धड़कनें-
कोई सुने ना सुने...
ये खामोश नहीं रहतीं।

नयनजल में डूबे नक्षत्र

सांझ की नीरव वेदना में,
जब जीवन का रवि ओझल हुआ,
तब नयन-विह्वल हृदय के भीतर,
एक मौन आँसू सा बह चला।

सुन शून्य दिशाओं की मर्मर,
विहग नहीं गाते थे कोई राग,
छाया की चूनर ओढ़े नभ में
उतर आया था एक अनजान अभाग।

विरह-वेला की उस घड़ी में,
तुम बस रोते रहे निस्पृह,
किंतु ओ प्रिय आत्मा! क्या कभी
तुमने देखे हैं तिमिर में दीप?

हर एक अश्रु की नमी में,
छुपे हैं नक्षत्रों के उजास,
पर आँसू की परछाईं में
ढक जाता है आकाश का प्रकाश।

जो गया, वह एक स्वप्न-शशि था,
मृगमरीचिका-सा मोह भरा;
पर जो बचा, वह शाश्वत अम्बर,
ज्यों आत्मा में गूंजा नाद अपरा।

जागो हे स्वान्तः स्रोतस्विनी!
यह अश्रु नहीं, यह अग्नि है।
इससे न जलाओ स्मृति-वन,
बल्कि देखो- यहीं कहीं तारे छिपे हैं।

छायाओं की इस सुरम्य छाया में,
जब तुम स्वयं को भूल चलो,
तब अनुभूति के पुष्प खिलेगें,
और शून्य में भी गीत फलेगें।

निशब्द नीलिमा

नहीं कोई कारण मेरे मौन का,
न ही कोई व्यथा का बोझ,
मैं बस थक गया हूँ-
मानव स्वरों की कृत्रिमता से।

जैसे वायु में बिखरते शब्द
अब मधु नहीं, विष घोलते हैं।
नभ में तैरते हैं संवादों के बादल,
पर वर्षा नहीं, केवल गर्जन है उनमें।

मैं अब मौन की सुधा पीता हूँ,
उस मौन की, जो हिमगिरि की शिखरों से
नीरव धाराओं की भाँति उतरता है
मन के निर्झर में।

संगीत जो संवादों से उपजा करता था,
अब विस्मृति की वीणा पर
स्वतः मौन रचता है।

इन अधरों से निकले स्वर
अब मोह का मुखौटा हैं,
और उनकी आँखों में छल है-
जो 'प्रिय' कह कर
प्रेम की परिभाषा चुराते हैं।

किंतु देखो-
व्योम की उस पार्श्व छाया में
एक निष्प्रयोजन नीलिमा है,
जो कहती है-
"चुप रहो, यहीं सत्य है,
यहीं आत्मा का स्वप्न पिघलता है।"

न अब आलोक की लालसा है,
न अंधकार से भय।
मुझे बस रहना है
उस क्षण में-
जहाँ शब्द जन्म ही न लें,
जहाँ हृदय स्वयं अपना संगीत हो।

नहीं, नहीं कोई कारण इस मौन का,
मैं तो अब उस अंतराल में जीवित हूँ,
जहाँ गुफ़्तगू एक क्षीण-सी छाया है,
और मौन- साक्षात् जीवन।

स्वप्न-विहग की गाथा

स्वप्न-विहग कलरव करते,
मौन निशा की छाया में,
छाँह-छाँह उड़ जाते मन के
सांध्य-सजल आँगन में।
नीरव नभ का नीलाक्षर,
ज्योति शिखा बन जाता है,
प्रिय छवि की झलक लिये
चिर स्मृति में रम जाता है।

चंपा-चाँदनी मिल गूंथें
मेरा चिर मौन श्रृंगार,
कनक-थाल में बिंधते
तेरे स्वर का मधुमय सार।
कदली-वदन तुम्हारा देख
बेला भी संकोच करे,
उषा की आँखें बनकर
मुझसे चुपचाप बात करे।

कुंतल-जाल-सी अंधियारी
बिखरी जब प्रिय की छाया,
हर पत्ता झंकृत हो बोला-
"यह तो उसका ही साया!"
मलय पवन की सौरभ छाया
तेरे अधरों की सुध लाए,
मन की पायल छनक-छनक
आशा के राग सुनाए।

विरह-वेला की अलकें
काजल-सा बह जाती हैं,
अंजन-पूरित स्वप्न नयन में
तेरी छवि रच जाती हैं।
महावर रचते कल्पनाएँ
तेरे चरणों के रूप में,
प्रिय मिलन की ज्वाला जलती
हृदय-दीप के कूप में।

मैं चुप हूँ, पर शब्द तुम्हारे
साँसों में घुलते जाते,
स्वप्नों के आभास लिए
नीरव भाव उमड़ आते।
स्वप्न यही भरमाते रहे
स्मृति के दृग-पटल पर,
कनक थाल से आते रहे-
प्रिय! तुम ही बनकर साज हर।

सौरभ-स्नान

पुष्पों सी तनु बन जाना तुम,
कुसुमित स्वप्नों में बसी हुई-
नीरव वनों की छाया जैसी,
शशि-किरणों में बसी हुई।

नील व्योम के अंचल में तुम,
सौरभ की सुरभित बान्धवी,
जहाँ गीत बनकर बहती हो
चपल पवन की सी माधुरी।

सौरभ धरती पर बिखराकर,
तुम जीवन को नहलाना,
शुष्क दिशाओं के अधरों पर
प्रिय स्मित बन मुस्काना।

मधु-मंथन करती प्रभा-धार,
तुम बूँदों-सी झर जाना,
शब्दों में भर गीत पियूष-
मूक हृदयों को गा जाना।

स्वप्निल साज सजाकर तुम,
अनगिन भावों में ढलती हो,
जैसे वीणा पर कोई राग
बिन छुए भी छनकती हो।

छा जाना तुम सारे जग में,
बस गंध नहीं- आत्मा बनकर,
नयन-कोर की उस नमी-सी
जो गिरकर भी रह जाती अंदर।

प्राण और पाथेय

जीवन कितना हल्का होता है-
मानव की मुस्कान सा,
किसी शिशु की नर्म अँगुलियाँ
जैसे थामें हो उषा का रेशमी आँचल।

जब भर लिया किसी को
माँ की गोदी में-
या बाँहों में प्रियतम को,
तो लगता है-
धरती भी हँसती है,
नभ गाता है
और क्षण,
चिरंतन हो जाते हैं!

उल्लास की उस लहर में
हवा भी पायल पहन लेती है,
पत्ते गाते हैं,
और जीवन नृत्य करता है-
शब्दहीन,
स्वप्नमय।

किन्तु मृत्यु?

मृत्यु भारी होती है-
जैसे संचित पीड़ा युगों की,
जब थामती हो कंधा
किसी नीरव हुए प्रिय का,
तो असहाय हो उठता है हृदय।

हर पग,
मानो सौ युगों की पीड़ा ढोता है,
चिता पर
जब अंतिम बार रखा जाता है शरीर-
वो देह,
जो कल तक
संगिनी थी प्रीति की,
अब
शून्य है-
पर शून्य भी कितना भार लिए होता है!

उस ख़ामोश देह में
गूँजती हैं अनगिन भावनाएँ-
अनकही बातों की गाथाएँ,
स्पर्श जो छूट गए,
नेत्र जो अब भी कुछ कहना चाहते हैं।

ओ मृत्यु!
तेरी निःशब्दता में
कैसी अनंत ध्वनि है!
जीवन की हल्कापन
तेरे विपरीत-
संदेश है कोई गूढ़,
कि हल्का वही है
जिसमें प्रेम है, स्पर्श है, सजीवता है।

मृत्यु-
तेरा बोझ
केवल शरीर का नहीं,
एक संसार का होता है।

धर्मरक्षा एवं मानवता की पुकार

मैं कवि हूँ, पर शब्दों से मौन नहीं,
मैं कमल हूँ, पर कीचड़ में मदहोश नहीं।
मैं गीत लिखता हूँ करुणा के,
शूल चुभें जब सीने में, रहता मैं ख़ामोश नहीं।

मैंने देखा है वह दिन-
जब रक्त से सिंचित हुई थी यह धरा।
जब धर्म के नाम पर,
मानवीय संवेदनाओं को दिया हरा।

सतहत्तर वर्ष पूर्व की वह "भीख",
जिस पर खड़ा हुआ था एक षड्यंत्रित राष्ट्र।
किसी राज्य का जन्म नहीं था वह,
वह था- विचारों का अपहरण, संवेदना का बलात्कार।

वह जन्मा था विभाजन से,
पर बढ़ा अधर्म के पालन से।
लाखों हिंदुओं की हड्डियों पर खड़ा,
वह आज फिर से विष उगल रहा।

मैंने तब भी लिखा था-
जब बेटियाँ चीख़ रही थीं लाहौर की गलियों में।
जब मांओं ने मिट्टी को माथे से चिपका लिया
अपनी अस्मिता ढँकने को।

तब भी हमने संयम रखा,
हमने रथ खींचा धर्मराज का।
किंतु अब...
अब शांति की बंसी नहीं बजती,
जब नाग फुंकारता है बारम्बार।

मैं कवि हूँ- पर अब गीत नहीं,
अब गरज लिखूँगा।
अब मेरे छंदों में शंखनाद होगा,
"अब मेरी लेखनी, वज्र सा प्रहार करेगी।"

जो देश आज आतंक के गर्भ से
संस्कृति की हत्या कर रहा है,
जो अर्थहीन धर्म की आड़ में
हर युग को रक्तरंजित कर रहा है-

उसके लिए अब मेरी कविता
केवल चेतावनी नहीं,
एक अग्निशलाका है!

हे मानव! अब समय है-
वह भ्रम का मेघ हटे,
कट्टरता का छद्म टूटे,
और एक यथार्थ का सूर्य उगे।

क्योंकि इस बार वो टकराया है
उस राष्ट्र से जो सहिष्णु तो है,
पर मूढ़ नहीं।
जो अहिंसक तो है,
पर निर्बल नहीं।

हम क्षमा कर सकते हैं,
पर भूल नहीं।
हम प्रार्थना कर सकते हैं,
पर प्रतीक्षा नहीं।

"अब एक नया युद्ध होगा-
केवल सीमाओं का नहीं,
बल्कि विचारों की व्याख्या का,
धर्म के अर्थ और अनर्थ का।"
मानवता और पिशाचता के बीच होगा।

और इस बार,
विजय केवल सीमा पर नहीं,
विचार में होगी।

क्योंकि मैं कवि हूँ-
कमल की तरह शांत,
पर वज्र की तरह प्रचंड।
आतंकवाद के विरुद्ध मेरे स्वर अनंत-अखंड।

अंदर का मौसम

जैसा ख़्याल हो वैसा मंज़र होता है,
मौसम तो इंसान के अंदर होता है।

रौशनी के शहर में तन्हा चलता हूँ,
हर साया मुझसे कुछ बेख़बर होता है।

आँखों में तस्वीरें टूटती रहती हैं,
हर सपना इक शीशा-सा बिखरा होता है।

वो जो मुस्कुराहट में दर्द रखता है,
हर ज़ख़्म वहाँ ख़ुद ही मरहम होता है।

इक चेहरा यादों में धुंधला होता है,
फिर भी दिल उस पल में ही रह-गुज़र होता है।

सिर्फ़ लफ़्ज़ नहीं हैं ये शेर मेरे,
हर मिसरा जज़्बों का सफ़र होता है।

मुद्दत से कोई अपना पास नहीं आया,
अब दिल भी शायद कुछ सख़्तर होता है।

“कमल” ने जब भी कलम उठाई है,
हर शेर में थोड़ा उदासी का असर होता है।

अंतिम मिलन

बहुत दिवसों के बाद मिले हम,
स्मृति-सुधा के मधु से छलके मन,
प्रिय-मिलन की उस मधुर घड़ी में
विस्मृत हो गया अंत: भवन।

पुलक भरे वो स्वर, हँसी की रागिनी,
अधरों पर बिखरी जैसे चाँदनी,
मधु-प्रवाह में डूबा समय
छिन-छिन बन गया स्वप्न-कविता-सी।

नयनों से नयनों की भाषा बोली,
ह्रदयों ने बाँधी मौन डोरी,
अतीत की वीणा फिर से झनकी,
प्रणय-रागिनी सब ओर बही।

किन्तु-
कोई मूक व्यथा सी तिर आई,
प्राणों में एक शंका भर लाई,
क्या यह मिलन अंतिम तो नहीं?
क्या यह प्रभा फिर ढलने को नहीं?

हम बोले वचन- "फिर मिलेंगे,"
प्राणों में आशा फिर से जगे,
पर अंतर की किसी वीणा पर
एक तान थी- "कौन जाने..."

हे ईश्वर! यदि यह अंतिम मिलन हो,
तो इसे तू अमरता का रूप दे,
हम रहें न रहें इस लोक में,
यह स्मृति चिर रहे मन में।

कालजयी मैं

मैं नहीं भाग्य-काल के वश में,
नियमों की रेखाएँ मेरा पथ नहीं।
मैं सृष्टि के अंधकार में उगा हुआ
वह दीप हूँ- जिसे
कभी प्रलय भी बुझा न सका।

मौन की मिट्टी में जो अंकुर फूटे,
वे मेरे ही स्वर बन गए हैं।
मैंने मृत्यु के अधरों से
जीवन की वंशी छीन ली है-
और उसमें साँसों की संजीवनी फूँकी है।

काल की तूलिका से
जब नियति चित्रित करती है पराजय,
मैं उस क्षण अपनी चेतना से
विजय का सूर्योदय उकेरता हूँ।

इच्छामृत्यु लिए सदा जिया हूँ,
हर दिन एक यज्ञ रहा है मेरा-
अग्नि की लपटों में तप कर
मैंने अपने ही शरीर से
स्वर्ण–अक्षरों में आत्मा का इतिहास लिखा है।

नदी बहती रही समय की धाराओं में,
मैं तट पर खड़ा-
एक वटवृक्ष-सा स्थिर, मौन, साक्षी रहा।
संघर्षों ने मुझे न झुकाया,
वियोग ने मुझे न मिटाया।
क्योंकि मैं तो कालजयी हूँ-
क्षणभंगुर इस जीवन की सीमाओं में
असीम को जीने का नाम हूँ।
मैं चिर अनंत चेतना हूँ,
जो मृत्यु से आगे भी
अपनी अनुभूति में बाँचता है जीवन।

सब अच्छा है

कौन है अपना, कौन है पराया-
यह सवाल बहुत पुराना है।
फिर भी हर चेहरा
एक रिश्ता बन ही जाता है,
जैसे जीवन स्वयं
हमें बाँध देता है
अनकहे धागों में।

कभी हँसी,
तो कभी सिसकी-
दो ही रंग हैं इस यात्रा के,
बाक़ी सब तो छायाएँ हैं
जो साथ चलती हैं,
बिना नाम, बिना परिभाषा।

शिकायतें...
बहुत की होंगी हमने भी,
मगर क्या मिला
उस तल्ख़ी से?
कुछ पल की बेचैनी
और फिर वही
खालीपन का आलाप।

अब लगता है-
जो भी है,
जैसा भी है,
सब अच्छा है।
क्योंकि ज़िंदगी
शब्दों से नहीं,
स्वीकृति से सुंदर होती है।

अस्तित्व का प्रश्न

मैं अलगाव नहीं हूँ,
बल्कि उस अनुभूति का प्रतिबिम्ब हूँ
जो तब जन्म लेती है
जब आत्मा स्वयं से प्रश्न करती है।

इस क्षण-
न तो आदि की आहट है,
न अंत की छाया।
मैं किसी कालखंड का वासी नहीं,
मैं काल की स्मृति हूँ,
जिसे कोई छू नहीं सकता
फिर भी वह हर एक में विद्यमान है।

क्या मैं 'काल' हूँ?
वह जो अपने ही भीतर
जन्म और मृत्यु का विस्तार समेटे है?
या फिर
वह भ्रम हूँ
जो समय का नाम लेकर
मनुष्यता को दिशा देता है?

विकराल हूँ या शांत?
मैं परिभाषाओं से परे वह तत्त्व हूँ
जो परिवर्तन को जन्म देता है
और फिर स्वयं को विस्मृत कर देता है।

भूतकाल कहो मुझे,
तो क्या वर्तमान से मेरा रिश्ता टूट जाएगा?
नहीं-
मैं वह रेखा हूँ जो भूत, वर्तमान, भविष्य
तीनों को एक सूत्र में बांधती है।

संघर्ष मेरा स्वभाव नहीं,
यह तो केवल वह क्रिया है
जिसमें अस्तित्व अपने अर्थ को खोजता है।
मैं मापता नहीं समय को,
बल्कि वह स्वयं मेरी श्वासों में आकार लेता है।

मैं मौन नहीं हूँ,
बल्कि वह प्रश्नवाचक मौन हूँ
जो विचार से पहले जन्मता है,
और उत्तर के बाद भी जीवित रहता है।

मैं कौन हूँ?
यह प्रश्न नहीं,
बल्कि वह दरवाज़ा है
जिसे पार करते ही
'मैं' और 'हूँ' दोनों विलीन हो जाते हैं।

और तब...
केवल 'होना' शेष रह जाता है।

प्रश्नों की मूक वेदना

नभ के नयन में निःशब्द पीड़ा,
तारक झलकते मौन ज्यों छाया-वेदना।
अमरबेल-से उलझे प्रश्न,
जिनका मूल नहीं भू पर,
केवल कल्पनाओं की छाया में बहते स्वर।

पवन की धीमी गति में
कभी सुनाई देती है उनकी सिसकी-
जैसे निर्झर के तल में
कोई खोया स्वर थरथराता हो।

उत्तर?
वह तो हिम-कण-सा निस्सार-
ज्यों हृदय-गुहा में गिरी स्वप्न-ओस,
जो छूते ही गल जाए,
रहे केवल शीतल चुप्पी।

भूतल नहीं देता आधार,
पदचिन्ह भी
कमल-पत्र पर टिकी बूँद-सा-
जो हर क्षण कंपित,
हर क्षण अस्तित्वहीन।

धरती-
अब सशंक मन की छाया भर,
निरंतर खिसकती ध्वनि-रेखा,
न स्थिर, न स्थूल।

मैं लहर हूँ, मैं गगन हूँ,
मैं स्वयं प्रश्नों की अनुगूँज-
कमल-सरित हृदय में
हिम-विरचित नाद-सी गूँजती
मधुर विषाद-रागिनी।

ओ आत्मा!
क्या तू भी
इन्हीं गगन-प्रश्नों में खो गई है?
या फिर,
तू ही वह मौन उत्तर है
जो शब्दों से परे,
हिम से निर्मल,
कमल से कोमल है?

पंचतत्व का सार

पंचतत्व से बनी देह, यह जीवन की रीत।
ज्ञान-कर्म की जोत से, मिटे अज्ञान की भीत।।

धरती दे आधार को, जल देता संजीव।
वायु जगावे चेतना, अग्नि करे सजीव।

आकाश समाहित करे, भावों की हर तान।
इनमें बंधा है शरीर, इनसे बना जहान।।

पाँच ज्ञान की इंद्रियाँ, सुनना, देखन, जान।
स्पर्श-गंध रस-बोध से, चेतन हो मन-प्राण।।

पाँच कर्म की शाखियाँ, वाणी, पग, कर, गात्र।
उत्पत्ति का रूप लें, कर्ममय हो राह।

पाँच पर्व जीवन के, जन्म-मरण, विश्वास।
प्रेम, तपस्या, त्याग से, हो आत्मा का पास।।

कच्ची माटी देह यह, समय करे परिपाक।
आत्म-ज्योति जल उठे, हो अंधकार का नाश।।

अगन लगे जो साधना, लगे प्रेम की लय।
अंतर की यह आगनी, करे जीव निर्भय।।

साँच मार्ग पंच तत्व, पाँचों इन्द्रिय भान।
जप-तप, योग, विवेक से, हो आत्मा पहचान।।

मैं अब भी खड़ा हूँ

चोटें आईं...
कुछ इतनी गहरी कि
शब्द भी चुप हो गए।
पर मैं गिरा नहीं,
टूटा भी नहीं,
बस थोड़ा और
अपने भीतर उतर गया।

धोखे भी मिले,
चेहरों के पीछे चेहरों को देखा
मासूमियत के आवरण में
स्वार्थ की धार टटोल ली...
पर विचलित नहीं हुआ।

मैंने हर रंग को
जीवन की तूलिका से छुआ-
सुख का, दुख का, मोह का, अभाव का।
कुछ रंग चिपके नहीं,
कुछ छूटते गए,
पर मैं
किसी रंग का कायल नहीं हुआ।

अब मैं ज़िंदगी को
जैसी है, वैसे जीता हूँ-
न अपेक्षाओं की गठरी है कंधों पर,
न रंजिशों की राख।

मैं बस हूँ-
सचेत, स्थिर,
और इतना जीवित
कि आँधियाँ भी अब
मुझसे रास्ता पूछने लगी हैं।

अडिग दीपक

आंधियों की बस्तियों में एक दीप जल रहा है,
खा रहा झोंके अहर्निश, जूझता पल-पल रहा है।
न तमिस्रा से डरा है वह, न लहरों से घबराया,
अपने छोटे से आलोक में भी वह दीप मुस्काया।

बूँद-बूँद स्नेह बचाकर, हर झोंके को हरता है,
थरथराती लौ, पर हार स्वीकार कहाँ वह करता है।
चारों ओर तिमिर छाया, नभ भी रूठा सा लगता,
किन्तु वहीं, कोने में कोई दीपाकल्प बन जगता।

धरा काँपती है जब-जब तूफ़ानों की आहट से,
दीपक कहता, "चलो आगे—अडिग चरण राहों से।"
न हाथों में शस्त्र कोई, न पीठ पर ढाल धरी है,
केवल साहस, केवल श्रम की लौ उसमें भरी है।

न किसी ने उसे पूजा, न फूलों का हार मिला,
लेकिन फिर भी न रुका, न उसका प्रकाश हिला।
झोपड़ी की बाती लेकर, और घी आँसुओं का,
दीप बना वह धैर्य का, पथदर्शक उन धुनियों का।

हर घर, हर मन, हर पथ वह खुद को बाँट रहा है,
अंधकार से निडर होकर उजियारा छाँट रहा है।
बोलो! क्या हार मान ले उस अंधड़ की क्रूरता से?
जिसकी लौ जली निरंतर आत्मा की पूर्णता से?

एक नन्हा दीपक बनकर जीवन जो शिक्षा देता,
साहस, सत्य, धैर्य का दीप सतत जलता रहता।
कौन कहेगा- छोटा हूँ मैं? कौन कहे- निर्बल हूँ?
जब तक दीपक सा जला हूँ, मैं अजर-अचल हूँ!

अंतर्निहित प्रकाश

निःशब्द व्योम में थकी चेतना सी,
मैं निस्तब्ध, अस्त होती रश्मियों में समा गया हूँ।
पर यह निष्क्रियता नहीं,
यह तो अंतर की अग्नि की मौन समाधि है।

भावों के झरने अब भीतर बहते हैं,
किंतु उनकी कल-कल ध्वनि
मेरे मौन में
एक दिव्य नाद बनकर गूंजती है।
संध्या का यह रंग
मेरे अंतर के ताप से तप्त है,
जिसमें नवीन प्रभा का बीज अंकुरित हो चुका है।

मुझे देख, न कहो कि मैं बुझ गया,
मैं तो दिव्यता की दिशा में
एक क्षणिक विलीनता हूँ।
मेरे अवसान में भी
एक अमरता की आभा छिपी है।

जब समय के गर्भ से मैं पुनः जन्म लूँगा,
तो शब्द नहीं होंगे केवल स्वर-
वे होंगे भावना के रथ,
जो आत्माओं को स्पर्श करेंगे।

मेरे भावों की आहुति से
राख में सृजन का सौरभ उठेगा,
और मैं-
एक नवीन सूर्य बन,
विश्व की चेतना को
फिर आलोकित करूँगा।

एक अनसुना पथिक

मैं हूँ एक अनसुना पथिक,
छाँव-धूप के देश में खोया,
जहाँ पगचिह्न नहीं रहते,
सिर्फ स्मृतियों की धूल बिछी होती है।

कंधे पर विस्मरण का भार लिए
चलता रहा मैं निशा की नर्म छाया में,
न कोई स्वर साथ चला,
न कोई दृष्टि ठहरी मेरी पीठ पर।

मन की गहराइयों में कोई पीड़ा
फूटी एक कली की तरह,
जिसे कभी उगने नहीं दिया,
बस मौन से सींचता रहा वर्षों।

एक चित्र- जो न था पूर्ण,
एक छाया- जो न थी स्थिर,
एक स्पर्श- जो न था अपना,
इन्हीं अधूरे आलंबनों में जीता रहा मैं।

कभी-कभी किसी निशि के ह्रदय में
कोई स्वप्न चुपचाप जाग जाता,
और मैं पूछता-
क्या यह मैं हूँ? या मेरा बिखरा हुआ प्रतिरूप?

विरक्ति मेरा परिचय बना,
और संनाटा मेरी भाषा,
जिन्हें मैंने प्रेम कहा,
वे सब छूटती परछाइयाँ रहीं।

मैं नहीं जानता कौन था मेरा,
किंतु जिन्हें मैंने पुकारा
वे सब किसी और छोर पर
ज्योति की तरह झिलमिलाते रहे।
अब जब जीवन के अंतिम पहर में
कोई नाम तक नहीं शेष,
मैं बस एक स्पर्श की कामना लिए
समय की देहरी पर बैठा हूँ।

विचलित नहीं

कष्टों की ये काली घटाएँ
जब बार-बार उमड़ती हैं,
तब मैं किसी पर्वत की भाँति
स्थिर रहता हूँ,
न डोलता हूँ,
न बिखरता हूँ।

यह जीवन
कभी आँधियों से लड़ता है,
कभी मौन होकर
अंधेरे से आँख मिलाता है।
पर मेरे भीतर
कोई प्रकाश जलता है
जिसे बुझा न सकीं
हजारों वेदनाएँ।

मैं विचलित नहीं होता
क्योंकि मैंने सीखा है
कि पीड़ा
सिर्फ शरीर को छूती है,
मन यदि संकल्प कर ले
तो वो अजेय बन जाता है।

न दुःख अब
मुझे रुलाते हैं,
न आँसू
मेरे संकल्प को धो पाते हैं।

मैं तो बस
उस विश्वास को थामे चलता हूँ
जो कहता है-
"होत वही जो हरि रचि राखा।"
जब जीवन की नाव डगमगाती है,
मैं नहीं डरता डूब जाने से,
क्योंकि मुझे भरोसा है
कि मेरे पतवारों में नहीं,
मेरे विश्वास में बल है।

संयम अब मेरा अभ्यस्त हो चला है,
और धैर्य मेरा अभ्यास।
इसलिए, संकट आएं या
समय हो प्रतिकूल-
मैं अपने केंद्र में स्थिर रहता हूँ।

कभी सोचता हूँ-
क्या यह दृढ़ता
किसी तप का फल है?
या फिर उस परम का आशीर्वाद
जो हर परिस्थिति में
मुझे थामे रहता है?

जो भी हो,
अब न मैं क्लांत होता हूँ,
न खिन्न, न विस्मित।
बस मन में
एक गूढ़ शांति रहती है-
कि जो भी हो रहा है,
वो उसी की इच्छा है।

सांझ का मौन संवाद

सांझ की नीरव छाया
झील की नर्म लहरों पर बिछी है-
जैसे क्षितिज ने अपने आँचल में
दिन का थकान भरा सिर रख दिया हो।

कमल की पंखुड़ियाँ
धीरे-धीरे बंद हो रही हैं-
जैसे कोई प्रणय निवेदन
प्रकृति की पलकों में सिमट रहा हो।

हम साथ हैं,
पर यह साथ कोई संयोग नहीं-
किसी अनकहे ऋतुगीत का अंतिम पद है,
जो आत्मा ने आत्मा को मौन में सुनाया है।

तेरा हाथ थामे
मैं इस सांझ में जैसे डूब रहा हूँ,
जहाँ रंग नहीं,
सिर्फ भाव बचे हैं-
और उस भाव की लहर पर
मेरा मौन तुम्हारे हृदय तक बहता है।

कमल की तरह
मेरे भीतर भी कुछ खिल रहा है-
शब्दहीन, निशब्द,
पर सुगंध से भरा हुआ।

यह मौन, यह सांझ, यह साथ-
मानो आत्मा के गहन सरोवर में
प्रेम की कमलिनी खिला रही हो,
जहाँ शब्द जल में घुल जाते हैं
और भाव ही भाषा बन जाते हैं।

मैं सीमित शब्दों में, विस्तृत अर्थों में

मैं बहुत सीमित हूँ -
अपने शब्दों में,
मानो किसी निर्झर की बूँद
जो आकाश का संदेश लिए
धरा पर उतरती है चुपचाप।

मेरी आवाज़ नहीं गूंजती
सभा-मंडपों में,
न ही मेरे भाव
नगाड़ों की तरह सुनाई देते हैं
मैं मौन में भी बोलता हूँ,
छाया में भी उजाले की
आहट छोड़ता हूँ।

मेरा हर अक्षर-
एक दीप है,
जो किसी सूने मन की
अंधेरी रात में टिमटिमाता है
और हर विराम -
एक गूंगी पुकार,
जो अनकहे एहसासों को
शब्दों से अधिक अर्थ देता है।

मैं बहुत विस्तृत हूँ-
अपने अर्थों में,
जैसे किसी फूल की नाजुक पंखुड़ी में
छुपा हो सम्पूर्ण वसंत,
या किसी आँसू की लहर में
बहता हो जीवन का सारा संघर्ष।

मेरे भीतर-
एक अथाह आकाश है,
जहाँ कल्पनाएं
तारों की तरह टंगी हैं,
और स्मृतियाँ
चाँदनी बन बरसती हैं।

कभी मैं
एक सूनी शाख पर बैठा पंछी हूँ,
जो बिना बोले
कई मौसम बुन देता है
कभी मैं
एक अधखुला पत्र हूँ,
जिसे पढ़ने वाला
अपने भावों से पूरा करता है।

छाया हूँ मैं-
पर हर प्रकाश की जननी भी,
स्वर हूँ-
मगर मौन की सबसे प्रखर व्याख्या
मैं एक प्रश्न की तरह जिया हूँ,
जिसका उत्तर
हर हृदय अपने ही शब्दों में गढ़ता है।

क्योंकि मैं बहुत सीमित हूँ,
अपने शब्दों में!
लेकिन बहुत विस्तृत हूँ,
अपने अर्थों में!!

स्वयं से संवाद

जब-जब हमने
खुद को पाने के प्रयास किए,
भीतर के कोलाहल को
धीरे-धीरे से सुलझाया-
तब-तब
बाहरी शोर भी थम-सा गया ,
जैसे कोई तूफ़ान
दृढ़ संकल्प के सम्मुख
अपनी दिशा मोड़ गया ।

जब आत्मा ने
भीतर से आवाज़ दी,
और हमने
उसे निःशब्द होकर सुना,
तब बाधाएँ भी
थरथराईं हैं-
अपने पांव समेटकर
चुपचाप किनारे हो गई हैं,
जैसे जान गई हों
अब यह मार्ग में रुकने वाला नहीं।

हर बार
जब भय की आँखों में
आँखें डाल देख लिया,
वह एक धुंध बन
क्षितिज से ओझल हो गया।
और हर बार
जब स्वयं से कहा-
"मैं हूँ",
तब समूची सृष्टि ने
स्वीकृति में सिर हिलाया।

खुद को पाना
मंज़िल नहीं-
एक यात्रा है,
जिसके हर मोड़ पर
हम अपने ही प्रतिबिंब को
एक नए रूप में पहचानते हैं।

शब्दों के परे

कुछ नहीं कहा गया अभी,
अभी बहुत कुछ शेष है कहने को -
शब्द जो खामोश हैं,
विचार जो सिरहाने पड़े हैं अनछुए,
भावनाएँ जो जुबां तक आते-आते
कहीं गुम हो जाती हैं।

तुम भी तय करो कुछ सीमाएँ,
कि हर भावना को
हर समय व्यक्त नहीं किया जा सकता।
हर द्वार खोल देना
हमेशा स्वागत नहीं होता,
कभी-कभी अपने भीतर के बंद कमरे
संघर्षों से भरे होते हैं,
जिन्हें रोशनी की आदत नहीं।

सरहदें सिर्फ ज़मीनी नक्शों पर नहीं होतीं-
ये मन के भूगोल में भी होती हैं,
कभी अनुभव की सीमा,
कभी सहने की,
कभी कह पाने की।
और इनका अंत नहीं होता
जब तक तुम स्वयं
एक बिंदु न तय कर सको।

प्रवेश के अधिकार अंतहीन हैं-
हर चेहरा, हर शब्द, हर दृष्टि
तुम्हारे भीतर आने का हक माँगती है।
और तुम...
हर बार मना भी नहीं कर सकते,
कभी-कभी तो
तुम्हें पता ही नहीं चलता
कौन कब भीतर दाखिल हो गया।

इसलिए-
कुछ सीमाएँ तय करना ज़रूरी है।
अपने मौन की, अपनी सहमति की,
अपने समय की और आत्मा की।

हर उदारता संपूर्ण नहीं होती,
हर खुलापन सार्थक नहीं होता।
कभी-कभी इनकार भी
अपने अस्तित्व की रक्षा है।

कुछ खिड़कियाँ सिर्फ -
रोशनी के लिए होती हैं,
हर दस्तक पर खोल दी जाएँ-
तो तूफ़ान भी आ जाते हैं।

इसलिए,
तय करो सीमाएँ,
कि भीतर की शांति
भीतर ही रह सके
और बाहर की हलचल
उसका स्वर न छीन ले।

क्योंकि जो कुछ नहीं कहा गया-
वही सबसे अधिक कहता है।
जो अनकहा है-
वही सबसे गहरा सच है।

अधूरी ख्वाहिशों का कारवां है ज़िंदगी

अधूरी ख्वाहिशों का कारवां है ज़िंदगी

अधूरी ख्वाहिशों का कारवां है ज़िंदगी,
मुकम्मल जो न हो वो फ़साना है ज़िंदगी।

जहाँ ढलते रहे ख्वाब मिट्टी में रोज़ ही,
बिखरे हुए शब्दों का तराना है ज़िंदगी।

कभी तन्हाइयों की कहानी, कभी ख़ुशी,
जुनूँ है, अश्क है, इक बहाना है ज़िंदगी।

न मंज़िल, न कोई ठिकाना मिला कभी,
सफ़र से ही मिला कारवां है ज़िंदगी।

कभी सन्नाटों में सिसकती हुई सुबह,
कभी नग़्मों में डूबी शामें है ज़िंदगी।

उसे पाया जिसे खो दिया वक़्त की लहर में,
वो लौटी याद बनके दिवाना है ज़िंदगी।

हकीकत से बहुत दूर बैठी है आरज़ू,
मगर हर ख्वाब में इक फ़साना है ज़िंदगी।

कभी पतझड़, कभी फूल जैसी नमी लिए,
हर इक मौसम की भी इक जुबां है ज़िंदगी।

बहुत रोकी गई, फिर भी बहती रही सदा,
कभी दरिया, कभी आसमां है ज़िंदगी।

स्वप्न-संध्या की प्रतीक्षा

जैसे सुधा से सिंचित थे
मन के वे दिवस-विहान,
नहीं अभी तक छू सके उन्हें
कालचक्र के कृपाण।

संयम की साँकल बाँध गई
मेरे अंतर की आशा,
दिवा-स्वप्न अब मौन खड़े
जैसे बिन पंखों के निराशा।

प्रति प्रभात नव शूल लिये
संधि-सूर्य मुसकाए,
हृदय-गुहा में ध्वनि हुई-
"क्या और तिल-तिल गाए?"

विचलित गति, नयनों में नीर,
स्पंदन बोझिल व्यथा का,
अभिलाषा के ओस-कणों में
चित्र अधूरा था पथ का।

किंतु न म्लान हूँ अभी भी,
प्राणों में एक प्रकाश है,
तप्त तपोबल बनकर अब
विरक्ति की मधु-श्वास है।

अरी नियति! कब तक बंधन?
यह प्रश्न नहीं- पुकार है,
स्वयं को पाने की चाह
अब आत्मा का उधार है।

अधूरी कहानियाँ

मंदिरों की देहरी पर
बंधे हैं धागे-
सफेद, लाल, कभी हरे...
हर रंग में छिपी है एक पुकार,
एक अधूरी आरज़ू,
जो न तो शब्दों में ढली,
न ही आँसुओं में पूरी बही।

वे धागे नहीं,
किसी की नींद से लिपटी बेचैनियाँ हैं,
किसी माँ की थमी हुई साँस,
किसी बेटी का अधूरा सपना,
किसी बूढ़े बाप की
भीतर ही भीतर टूटती उम्मीद।

उस देने वाले ने
शायद सबको कुछ देकर
कुछ छीन लेना सीख लिया है-
पूरी न हो कोई दास्तां,
ताकि हर बार लोग लौटें उसी चौखट पर,
उसी विश्वास के साथ
कि इस बार शायद...
पूरी हो जाएगी कहानी।

मगर शायद,
अधूरापन ही उसका हस्ताक्षर है,
और यही अधूरी कहानियाँ
बुनती हैं वह पूरी दुनिया-
जहाँ हर धागा,
एक प्रार्थना है,
एक इन्तज़ार है।

स्मृति की धूप में

नयन-नीर बन गई है वाणी,
सुधि-सुधि में सोई पीर पुरानी,
छाँह बनी पथ की तपन जब,
काँप उठी अंतर्मन की कहानी।

कभी भाग्य ने दीप बुझाया,
कभी अपनों ने आँचल जलाया,
हमने तो केवल फूल चुने,
कांटों ने हर सपना बहलाया।

शिक्षा थी जैसे शुष्क लता,
न फल, न छाँव, न कोई व्यथा-
बस आदर्शों की सूनी सीढ़ी,
जहाँ थक गई जीवन-गाथा।

भावुकता की रेशमी डोरी
बंधी रही पत्थर से, हारी,
हर मुस्कान में था विष घोला,
प्रेम की पूजा बन गई भारी।

पग-पग अग्निपथ पर चलना,
स्वप्नों का नीरव तर्पण करना,
कब तक यह अंतर्यात्रा हो?
कब तक खुद को ही विसर्जन करना?

षड्यंत्रों की श्वासें घेरें,
नयनों को धुंधले दर्पण दें,
अब मौन ही मेरा संगीत बने,
शब्दों को क्यों प्रताड़ना दें?

वटवृक्ष : एक मौन नायक

काश, मैं होता उस नदी के किनारे
जहाँ वटवृक्ष की छाया
चुपचाप फैलती है धरती की पीड़ा पर।
जहाँ समय थम जाता, बस साँसें चलती हैं।

वह खड़ा है-
जैसे कोई पुराना ऋषि,
जो सब कुछ जानता है
पर बोलता कुछ नहीं।

पत्तों पर ठहरती चिड़ियों की चहचहाहट
उसके हृदय में उतर जाती है
फिर भी वह शांत रहता है-
न अपनी थकान बताता,
न अपना एकांत।

उसकी जड़ों में बहती हैं
विस्मृत इच्छाओं की धाराएँ,
और डालों पर टंगी हैं
कभी न कहे गए प्रेम-पत्र।

सब उसे छाया समझते हैं,
कोई उसे प्रेम नहीं समझता।
वह देता रहा-
आश्रय, मौन, स्पर्श,
और एक अथाह धीरज,
बिना किसी प्रतिदान के।

काश, मैं उसकी मौन भाषा बन पाता,
उसके झरे हुए पत्तों को पढ़ पाता,
और लिख पाता
उसका वह एकांत प्रेम,
जो कभी शब्दों में नहीं ढलता-
केवल चुप्पियों में साँस लेता है।

शब्दों की वीणा पर

बैठा हूँ मौन,
नीरव संध्या की छाया-सी
मन के द्वार पर
जहाँ विचारों की हल्की थाप
जागृत करती है कोई पुरानी तान।

शब्द-
जैसे पंखहीन परिंदे,
उड़ना चाहते हैं मेरे अंतर से,
पर मैं उन्हें रोक रहा हूँ
कि कहीं वे चुभ न जाएँ किसी के आँगन में।

भाव बुन रहा हूँ
मौन सुरों की ओट में,
जहाँ आँसू भी गाते हैं
और पीड़ा बनती है संगीत।

मैं ढूँढ रहा हूँ
एक ऐसा सत्य-
जो शूल नहीं, शीतल चाँदनी हो
जिससे हृदय के कोमल अंकुर
मुरझाएँ नहीं।

धड़क उठा है हृदय अनायास,
कोई मृदुल राग, अनसुना-सा,
झंकृत करता है नीरव भीतर-
फागुन की बाँसुरी कहीं
वन-विहगों के पंखों पर थिरकती है।

कुहुक उठी है कोयल,
अमराई गा उठी है मधुर गीतों में,
यादों की वीणा पर
साजन की छवि उकेरता है
चंद्र किरणों का स्पर्श।

वृक्षों की छाया में,
झुकी-पड़ी हैं स्नेहभरी झाँकियाँ-
जहाँ फूलों ने रच दिए हैं रूपक
उस एक नयन मिलन के,
जो बसंत की अगवानी बन
मन के उपवन में उतर आया।

बसंत का प्रथम स्पर्श

धरती ओढ़े है हरित चुनर,
अंबर पहनाए है किरणों का मुकुट,
पवन संजो लाया है मिलन की गंध
और मन बन गया है कोई मधुर आलंबन-
जिसमें प्रिय की परछाईं
पुष्प-छाया सी थिरकती है।

बसंती ऋतु!
तू ही तो वह मौन निमंत्रण है
जिसमें शब्द नहीं,
सिर्फ़ अनुभूति है-
और उसी में पलता है
प्रेम... जिसे कहा नहीं जा सकता,
पर हर पत्ता, हर पराग
उसे गीत बना रहा है।

मैं चाहता हूँ
मेरे शब्द
संध्या की वेला में बजी वीणा-से उतरें,
कोमल, मधुर, और निर्वेद।
न आहत करें किसी स्वप्न को,
न रुलाएँ किसी चुप्पी को।

बस एक राग बन जाएँ-
जो हृदय की थाह ले,
और लौट जाए
मृदुल स्पर्श-सा किसी अनजाने आँचल में।

पंकज शर्मा 'कमल'

जन्म तिथि : 28 जनवरी

जन्मस्थान : दिल्ली

मूल निवासी: बुलंदशहर (उत्तर प्रदेश)

शिक्षा: स्नातकोत्तर अंग्रेजी साहित्य, मेरठ विश्व विद्यालय (उत्तर प्रदेश)

लेखन यात्रा: 2010 से प्रेरणात्मक आलेखों और उद्धरणों से आरंभ हुई और 2015 के बाद काव्य सृजन की ओर कदम बढ़े। मूल अभिरूचि प्रेरणात्मक लेखन रही परंतु कविता में झुकाव विशेष रूप से छायावादी भावभूमि और छंदमुक्त शैली की प्राथमिकता रही।

"रेत, बीज और दीप" काव्य संग्रह, इसी संवेदनशील और विचार प्रधान प्रवृत्ति का सशक्त प्रमाण है। यह संग्रह भावनात्मक गहराई, चिंतनशील दृष्टिकोण और आधुनिक काव्य शैली का सुंदर संगम है। संग्रह की अधिकांश रचनाएँ छायावादी वातावरण और छंदमुक्त लय में ढली हुई हैं, जो पाठकों को आत्ममंथन, प्रेरणा और आशा से भरने में सक्षम सिद्ध होगी।

मेरी लेखनी न केवल शब्दों में सौंदर्य रचती है, बल्कि मन के अंतरतम को स्पर्श कर जीवन की दिशा में सकारात्मक दृष्टिकोण भी देती है।

रूचियाँ: संगीत, पठन - पाठन, भ्रमण, सिनेमा, समाज सेवा।

निवास: ग्रेटर नोएडा (उत्तर प्रदेश) 201306

ई-मेल- pankajsharma28jan1964@gmail.com

रेत, बीज और दीप

amazon Flipkart NEELAM PUBLICATION

Price : 300/-

978-93-48519-52-8

9 789348 519528